दान के अचिंत्य प्रभाव

एलाचार्य मुनि वसुनंदी

प्रकाशकः
डी०सी० मीडीया ''निकुंज'' टूण्डला
फिरोजाबाद उ०प्र०

कृतिः

दान के अचिंत्य प्रभाव

मंगलाशीषः

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि. श्वेतपिच्छाचार्य
श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

एलाचार्य मुनि वसुनन्दी

सहयोगीः

संघस्थ सभी साधुवृंद एवं त्यागी व्रती

द्वितीय संस्करणः **अक्टूबर** 2011

मूल्यः 50 रुपये

प्रकाशकः

डी.सी. मीडीया टूण्डला फिरोजाबाद उ.प्र.

मुद्रकः

जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज'' मो० 9058017645

प्राप्ति स्थानः

श्री सत्यार्थी मीडीया राष्ट्रीय कार्यालय
रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा
फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

अन्तर्ध्वनि

एलाचार्य वसुनंदी मुनि महाराज

गज तुरग सहसूं गोकुलं भूमिदानं
कनक रजत पात्रं मेदिनी सागरांतं।
उभय कुल पवित्रं कोटि कन्या प्रदानं
नहि सम भवतु अन्न दानं समानं।।

साभार-स.कौ.से.

अर्थः- एक हजार हाथी-घोड़े, गायों के समूह दान देना, भूमि (जिनालयों आदि के निर्माण हेतु) दान देना, स्वर्ण व रजत पात्रों का (जिनेन्द्र पूजन व पात्र दान हेतु) दान देना, सागर पर्यंत वसुधा का दान देना, दोनों कुलों को पवित्र करने वाली करोड़ों कन्याओं का दान देने की अपेक्षा पात्रों को (विशुद्ध मापों द्वारा, नवधा भक्ति व सप्त गुणों से युक्त, पाँच दूसणों से रहित होकर व पाँच आभूषणों से सहित होकर आहारादि) दान देना अधिक श्रेष्ठ हैं, अर्थात् ऊपर कहे गये सभी दान उत्तम पात्र को दिये गये एक ग्रास आहार की बराबरी नहीं कर सकते।

जो मुनि भुत्त वसेज्ञं, भुंजदि सो भुंजदे णियदं।
संसार सार सोक्खं, कमसो णित्वाण वर सोक्खं।।२२।।

आ०कुन्दकुन्द स्वामी कृत र.सा.

अर्थः- जो कोई भी भव्य जीव मुनिराज को नवधा भक्ति पूर्वक दान देकर शेष बचे हुए आहार को गृहण करता है। वह भव्यात्मा संसार के सारभूत सभी सुखों को भोगकर क्रमशः निर्वाण सुख को प्राप्त करता है।

जिन शासन की जीवंतता जिन आयतनों से हैं, जिन संस्कृति का

संवर्द्धन ही जिन शासन की प्रभावना का कारण है। सच्चे देव, शास्त्र गुरु एवं जिनबिम्ब, शास्त्रोंपासक निर्ग्रंथ गुरुओं के भक्त इनसे जिनशासन जीवंत है।

"न धर्मो धार्मिकै र्बिना"

आ. समंतभद्र स्वामी

अर्थः- बिना धर्मात्मा के धर्म नहीं ठहरता। श्री सर्वज्ञ देव वीतरागी सर्व तीर्थंकरों की वाणी में धारक की अपेक्षा दो भेद हैं। प्रथम श्रमण धर्म तथा दूसरा श्रावक धर्म।

"बिना श्रावक के श्रमण धर्म की प्रवृत्ति व बिना श्रमण के श्रावक धर्म की स्थिति-वृद्धि असम्भव है।" ऐसा कहा जाता है। किन्तु श्रावक के बिना श्रावक व श्रमण धर्म दोनों असम्भव है, कहा भी है-

"निश्चय राग-द्वेष निखारै, दाता दौनों धर्म/दान संवारै।"

उत्तम दाता दोनों धर्मों या दोनों दानों को सम्भालने वाला है। व्यवहार दान का प्रत्यक्ष व निश्चय दान का परोक्ष हेतु है।

दाता अपने मुख्य कर्तव्यों को जाने, समझे, प्रवत्ति करे इस हेतु यहाँ दान के प्रभाव दर्शाने वाली कथाओं से युक्त कृति का सृजन किया है, इसमें मेरा अपना कुछ भी नहीं है सब कुछ पूर्वाचार्यों की आगम में निषद्ध वाणी है, भव्य जीव इसके माध्यम से अपने आहारादि दान के कर्तव्यों में विशेष प्रवृत्ति करेंगे, ऐसी हमें आशा है।

प्रस्तुत कृति का पाठक महोदय हंसवत गुण ग्राही दृष्टि बनाकर स्वाध्याय करें, इस कृति "दान के अचिन्त्य प्रभाव" के शब्द संयोजन/संपादन में कोई त्रुटि रह गयी हों तो अभेद रत्नत्रय धारी निर्ग्रंथ मुनिराज हमें सुझाव प्रेषित करने का अनुग्रह करें।

"सर्वेषां शांति र्भवतु"

"जैनं जयतु शासनम्"

प्रथम कथा

राजा श्रीषेण

जम्बू द्वीप के अन्तर्गत भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड में अत्यन्त सुरम्य मलय नाम का देश था। उसके मध्य धर्मानुरागी जनों से परिपूर्ण रत्न संचय पुर नामक नगर में न्याय प्रिय, धर्म वत्सल प्रजा का पुत्र वत् पालन करने वाला श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा की सुशील, सलज्ज, पति आज्ञानुकारिणी, धर्मप्रिय सिंह नन्दिता व अनिन्दिता नाम धारक दो रानियाँ थीं। उन दोनों के क्रमशः इन्द्र व उपेन्द्र नाम के दो पुत्र हुए।

उसी नगर में एक सात्यक नामक ब्राह्मण रहता था, उसकी पत्नि का नाम जम्बू और पुत्री का नाम सत्यभामा था, ये सब यहाँ सुख पूर्वक स्थित थे, तभी मगध देव के अचल ग्राम से कपिल नामक दासी पुत्र-ब्राह्मण पुत्र के भेष में यहाँ आया। उसके आने का कारण इस प्रकार है कि मगध देश के अचल नामक ग्राम में थरणी जड़ नाम का एक ब्राह्मण रहता था, उसकी पत्नि का नाम अग्निला था, इनके चन्द्रभूति व अग्निभूति नाम के दो पुत्र थे। उसके एक कपिल नाम का दासी पुत्र भी था जो अतिशय बुद्धिमान और सुन्दर था। धरणी जड़ ब्राह्मण जब अपने पुत्रों चन्द्रभूति व अग्निभूति को वेद शास्त्रों का अध्ययन कराता था तब वह दासी पुत्र भी उसे छुप कर सुनता रहता था। इससे वह वेदादि शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो गया था। उसके शास्त्र ज्ञान को देख कर धरणी जड़ ने उसे अपने घर से निकाल दिया था तब वह यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोचित चिह्नों को धारण करता हुआ अपनी विद्वत्ता से जन सामान्य के मन को मोहित करता हुआ, मलय देश के

रत्न संचय पुर नामक नगर में आ गया। सात्यक ब्राह्मण ने उसे गुणी और शरीर मात्र से सुन्दर देख कर, तथा वेदादि का ज्ञाता होने से ब्राह्मण जानकर अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह उसके साथ कर दिया।

वह ब्राह्मण के योग्य क्रिया काण्ड में अत्यन्त शिथिल एवं तीव्र कामी व वासना युक्त था, उसकी इस प्रकार की विट् पुरुषों जैसी प्रवृत्ति देखकर सत्यभामा ने मन में उसके कुल के बारे में संदेह हुआ, जिससे सत्यभामा उस कपिल से विरक्त हो रहने लगी। कुछ दिनों के पश्चात् मगध देश के अचल ग्राम में रहने वाला वही धरणी जड़ ब्राह्मण कपिल की वृद्धि को सुन, धन ग्रहण करने की इच्छा से उसके पास आया। उसने यह मेरा पिता है यह कह कर सब के मध्य अपने आपको ब्राह्मण सिद्ध कर दिया तथा धरणी जड़ भी उसके घर पर सुख पूर्वक रहने लगा।

एक दिन जब कपिल किसी कारण वश बाहर गया था तब सत्यभामा ने ससुर धरणीजड़ के सामने धन को रखकर उससे पूछा कि कपिल की जाति कौन सी है? इसके उत्तर में धरणीजड़ ने यथार्थ वृतान्त कह दिया। तब सत्यभामा ने राजभवन में जाकर उसके वृत्तान्त को राजा से कहा। तब राजा ने सम्पूर्ण वृत्तान्त जान कर, उक्त घटना के सम्बन्ध में पूर्ण विचार करके कपिल को गधे के ऊपर सवार कराया और नगर में घुमाते हुए अपने देश से बाहर निकाल दिया। तब सत्यभामा राजभवन में ही रही। राजा भी इसका पुत्रीवत् पालन पोषण करने लगा।

एक दिन अनन्त गति और अरिंजय नाम के दो चारण ऋद्धि धारी मुनिराज आहार चर्या हेतु नगर में आये। जब वे राजभवन के सामने से निकले तब राजा श्रीषेण ने उनका भक्ति पूर्वक पड़िगाहन किया, नवधाभक्ति एवं दाता के सात गुणों से युक्त हो, अत्यन्त विशुद्धि पूर्वक उन्हें आहार दान दिया। उस समय उसकी दोनों रानियों एवं सत्यभामा ने इस आहार दान की अनुमोदना की।

एक समय राजा श्रीषेण के इन्द्र और उपेन्द्र दोनों पुत्र अनन्तमती नामक विलासिनी के निमित्त परस्पर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गये। राजा ने उन्हें इसके लिए बहुत रोका किन्तु उन्होंने अपने दुराग्रह को नहीं छोड़ा। इस बात से राजा को बहुत दुख हुआ तब उस मानसिक दुख सहने में असमर्थ हो राजा ने दोनों रानियों व ब्राह्मणी सत्यभामा ने विष पुष्प को सूँघ कर अपने प्राणों का परित्याग कर दिया।

मुनियों के लिए दिये गयें आहार दान के प्रभाव से कषाय की मन्दता जन्य धर्मानुराग के भाव से एवं मनुष्यायु का बंध होने से वह राजा धातकी खण्ड दीप के पूर्व मेरु सम्बन्धी मन्दरमेरू उत्तर कुरू नामक उत्तम भोग भूमि में आर्य हुआ। उक्त दान की अनुमोदना करने से सिंह नन्दिता उस आर्य की आर्या हुई। (भोग

भूमि में जन्में मनुष्यों के नाम नहीं होते वहाँ आर्य व आर्या का व्यवहार होता है।) अनन्दिता का जीव उसी भोग भूमि में आर्य तथा ब्राह्मणी सत्यभामा का जीव इस आर्य की आर्या हुई। ये सब वहाँ दस प्रकार के कल्प वृक्षों के माध्यम से सहजोपलब्ध फलों को भोगते हुए दिव्य सुखों का अनुभव करने लगे। उनकी आयु तीन पल्य प्रमाण (असंख्यात वर्षों की) थी। वे आधि, व्याधि, रोग, भय, आतंक व जरादि दुख से सर्वथा रहित थे। अकाल मरण से रहित हो तीन पल्य की पूर्ण आयु को सुखों के साथ भोग कर वह राजा श्रीषेण का जीव सौधर्म स्वर्ग के भीतर श्रीप्रभ विमान में श्रीप्रभ नामका देव हुआ। वहां से च्युत होकर वह श्रीषेण राजा का जीव विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथनूपुर के राजा अर्ककीर्ति व रश्मिमाला का अमित तेज नामक पुत्र हुआ, जो विद्याधरों का चक्रवर्ती था। वहाँ राज्य वैभव भोग कर, अंत में तप को स्वीकार कर आनत स्वर्ग के नन्द भ्रमण विमान में मणिचूड़ नाम का देव हुआ।

फिर वहाँ से च्युत होकर वह श्रीषेण राजा का जीव जम्बू द्वीप के पूर्व विदेह में विद्यमान वत्सकावती देश के अन्तर्गत प्रभाकरी पुरी के स्वामी स्तिमित सागर और वसुन्धरी के अपराजित नामका पुत्र हुआ जो बलदेव था। बहुत समय तक राज्य करके, तप को ग्रहणकर समाधि पूर्वक मरण करके अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। फिर वहाँ से आयु पूर्ण कर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में मंगलावती देशस्थ रत्नपुर के स्वामी क्षेमंधर महाराजा एवं रानी हेमचित्रा के वज्रायुध नामका पुत्र हुआ। महाराज क्षेमंधर क्षेमंकर तीर्थंकर के पुत्र थे। वज्रायुध ने सकल चक्रवर्ती होकर बहुत समय तक राज्य किया। अंत में तप को स्वीकार कर उपरिम अधस्तन सौमनस होकर वह राजा श्रीषेण का जीव इसी जम्बूदीप के पूर्वविदेह में स्थित पुष्कलावती देश के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरी में तीर्थंकर कुमार अभ्ररथ राजा व मनोहरी रानी के मेघ रथ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह महा मण्डलेश्वर था, तत्पश्चात वह तपश्चरण करके, सोलह कारण भावनाओं को भाकर, तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता हुआ, समाधि के द्वारा परमोत्तम मरण को प्राप्त हो, सर्वार्थ सिद्धि में अहमिंद्र हुआ। वहाँ तेतीस सागर की आयु पर्यंत स्वर्गिक सुख भोग कर, गर्भावतरण कल्याण पूर्वक कुरू जंगल देश के अन्तर्गत हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन और रानी ऐरा के पुत्र शांति नाथ हुए। गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व मोक्ष कल्याणकों के साथ-साथ चक्रवर्ती व काम देव के उत्तम भोगोपभोग व वैभव के भोक्ता हुए।

इस प्रकार से एक बार दान देने वाला वह मिथ्यादृष्टि श्रीषेण राजा जब उसके फल से बारह भवों में मनुष्य व देवों के दिव्य सुख भोग कर मोक्ष को प्राप्त

हुआ है तब जो सम्यग्दृष्टि भव्य जीव आहारादि चार प्रकार का दान उत्तम पात्रों को देता है क्या वह मुक्ति कान्ता का प्रिय नहीं होगा?

अर्थात अवश्य होगा। इस कथा को यहाँ संक्षेप में लिखा है, विस्तार से जानने के लिये श्री शांतिनाथ पुराण या शांति चरित्र का स्वाध्याय करें।

श्रीं श्रीवेणो नृपालः सुरनरगतिजं दाता सुतनुक–
स्तज्जाये चानुमोदाद द्विजवरतनुजा दानस्य सुमनेः।
भुक्त्वाव दीर्घं हि सौख्यं वितनुस्वगुणका जाताः सुविदिता–
स्तस्माद्दानं हि देयं विमल गुणगणै र्भव्यैः सुमुनमे।।1।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- मुनि के लिए आहार देने वाला श्री श्रीवेण राजा सुंदर शरीर से सहित होता हुआ देव और मनुष्य गति के लम्बे सुख को भोगकर शरीर से रहित सिद्धों के आठ गुणों से संयुक्त हुआ है- मुक्त हुआ है। तथा उसकी दोनों पत्नियों और उस ब्राह्मण पुत्री (सत्यभामा) ने भी उक्त मुनिदान की अनुमोदना से देव व मनुष्य गतियों के सुख को भोगा है। यह भली-भाँति विदित है। इसलिए निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों को उत्तम मुनि के लिए दान देना चाहिए।

द्वितीय कथा

सेठ सुकेतु

इसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत पूर्व विदेह क्षेत्र में स्थित पुष्कलावती देशस्थ पुण्डरीकिणी नाम का नगर है वहाँ जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी, न्याय प्रिय, प्रजा पालक वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। "यथा राजा तथा प्रजा" की नीति को चरितार्थ करने वाली वहाँ की प्रजा न्याय नीति पूर्वक अपने कर्तव्यों का परिपालन करती हुई धर्म कार्यों को भी निष्ठा के साथ करती थी। उसी नगर में श्रावक के षडावश्यक कर्तव्यों का पालन करने में निरत सुकेतु नाम का वैश्य रहता था। उसकी प्राण प्रिया का नाम धारिणी था।

एक समय सुकेतु व्यवसाय हेतु द्वीपान्तर को जाते समय नागदत्त सेठ के द्वारा निर्मित नागभवन के समीप शिवंकर उद्यान के मध्य पड़ाव डाल कर ठहरा हुआ था। मध्याह्न काल में उसकी पत्नी धारिणी अपने पति के लिए घर से शुद्ध भोजन लाई थी। वह श्रेष्ठी सुकेतु व्रती श्रावक होने से अतिथि संविभाग व्रत का धारी था, अतः आहार करने से पूर्व अतिथि की प्रतीक्षा करता हुआ पड़गाहन के लिए वहाँ खड़ा हुआ। उसी समय एक गुण सागर नामक मुनिराज अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वहाँ चर्या के लिए आये। सेठ सुकेतु के निर्मल परिणामों के प्रभाव से उसके निकट साढ़े तीन करोड़ रत्न बरसे किन्तु उन्हें नागदत्त ने यह कह कर कि 'ये मेरे नागभवन के सामने गिरे हैं' ग्रहण कर लिया परन्तु वे फिर भी वहां न रह सके और वहीं जा पहुँचे। नागदत्त ने उनको पुनः उठा लिया, किन्तु फिर भी वे जाकर वहीं स्थित हो गये।

यह देख कर नागदत्त को क्रोध आ गया। और उसने अविवेकता के साथ रत्नों को फोड़ने का निश्चय किया, इसी आशय से उसने एक रत्न को उठाकर जोर से पत्थर की शिला पर दे मारा। उसकी इस विवेक शून्य क्रिया का फल भी उसे तत्काल में मिल गया।

क्रोध एक ऐसा शत्रु है वह जब आता है तब सबसे पहले विवेक को वहाँ से भगा देता है और अपने पारिवारिक बंधु जन अशांति, संक्लेशता मूर्खता आदि बन्धुओं को अपने-अपने कार्य में नियुक्त कर देता है तथा जाते समय पश्चाताप को छोड़कर चला जाता है। नागदत्त ने जैसे ही रत्न शिला पर पटका था, वह उचट कर उसके ही मस्तिष्क में लगा। यह दृश्य देखकर देवों ने उसका उपहास करते हुए उसका नाम मणिनागदत्त रख दिया।

तत्पश्चात् नागदत्त ने क्रोध के साथ वसुपाल राजा के पास जाकर प्रार्थना की, हे देव! मैंने आपके नाम से जो नागभवन बनवाया है, उसके आगे आज रत्नों की वर्षा हुई है। अतः आप किसी को भेजकर वहाँ से रत्नों को मँगवा लें, तथा उन्हें अपने भण्डारागार में रख लें। तब राजा वसुपाल ने कहा कि मुझे उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। तब नागदत्त राजा वसुपाल के चरणों में गिरकर बार-बार प्रार्थना करने लगा। नागदत्त के अति आग्रह को देखकर राजा वसुपाल ने वे रत्न वहाँ से मँगवा भी लिए किन्तु थोड़ी देर बार वे रत्न पुनः वहीं पहुँच गये। तब राजा ने विचार किया कि रत्न वृष्टि किस के निमित्त से हुई है? ये रत्न मेरे नहीं हैं, यदि मेरे भाग्य में होते तो मेरे आँगन/महल में बरसते तथा यहाँ लाने पर यहीं स्थित रहते। इस बात को राजा ने जब नागरिक जनों से पूछा तब उन्होंने कहा कि सेठ सुकेतु ने गुणसागर नामक ऋद्धि सम्पन्न महामुनि के लिए आहार दिया है उस आहार दान के प्रभाव से ही रत्न वृष्टि हुई है। यह सुनकर राजा ने कहा कि मैंने नागदत्त की बातों में आकर बिना विचारे कार्य किया था। इसलिये मैं अपमान को प्राप्त हुआ। राजा/मालिक को कान का कच्चा नहीं होना चाहिए तथा किसी की बातों में भी नहीं आना चाहिये। स्वयं ही सत्य का निर्णय करना चाहिए। इस प्रकार राजा ने अपने मन में बहुत पश्चाताप किया। तत्पश्चात् राजा ने सुकेतु सेठ को बुलाया। सेठ सुकेतु ने पाँच रत्न व कल्प वृक्ष के पुष्प भेंट कर राजा के दर्शन किये, क्योंकि राजा, ज्योतिषी, वैद्य, गुरू व भगवान् के दर्शन कभी खाली हाथ नहीं करना चाहिए, खाली हाथ दर्शन करने से फल की प्राप्ति नहीं होती। तब राजा ने सेठ से कहा कि मैंने जो अज्ञानता पूर्वक कार्य किया है उसके लिए मुझे क्षमा करो और अपने घर पर सुख से रहो। यह सुनकर सेठ बोला कि हे पृथ्वीपालक नृपवर आप इन रत्नों के ही स्वामी नहीं हो

अपितु मेरे भी स्वामी हो। यदि आवश्यकता हो तो आप उनको ले लीजिये। इस पर राजा ने कहा क्या वे रत्न आपके घर में स्थित रहकर मेरे नहीं हो सकते हैं? जब मुझे आवश्यकता होगी तो उन्हें मँगवा लूँगा। तब सेठ ने कहा कि यह आपकी महती कृपा होगी। तत्पश्चात् अब द्वीपांतर जाने से कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा, यह सोचकर वह सुकेतु सेठ अपने घर में प्रविष्ट होकर वहाँ ही सुख पूर्वक स्थित हुआ। अब जो कोई भी पुरुष सुकेतु सेठ की प्रशंसा करता राजा उस पर प्रसन्न रहता था किन्तु मणिनागदत्त सेठ उससे विद्वेष करने लगा था।

एक समय राजा ने राजसभा के मध्य सेठ सुकेतु की प्रशंसा की, उसे जिनदेव सेठ सहन नहीं कर सका। वह बोला हे देव! आप सुकेतु के रूप की प्रशंसा करते हैं या गुण की या लक्ष्मी की। यदि रूप और गुणों की प्रशंसा करते हैं तब तो ठीक है किन्तु लक्ष्मी में वह मुझसे श्रेष्ठ नहीं हो सकता। सेठ सुकेतु ने कहा भाई जिनदेव किसी व्यक्ति को धन आदि का घमण्ड नहीं करना चाहिए, इस पर जिनदेव ने कहा नहीं, मैं तुमसे लक्ष्मी में श्रेष्ठ हूँ, राजा की आज्ञा से दोनों में यह शर्त लगी कि जिसका धन अधिक होगा वह दूसरे के धन को ग्रहण करेगा। तब धन विवाद में विजय सुकेतु सेठ की हुई, तब जिनदेव हारकर विरक्त हो जिनदीक्षा ग्रहण करने यह कहकर चल दिया। वास्तव में विजय मेरी हुई है यदि ऐसा न होता तो मैं मोह रूपी शत्रु को कैसे जीत पाता। सुकेतु के बहुत रोकने पर भी जिनदेव ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। तब सुकेतु ने जिनदेव की सम्पत्ति उसके पुत्र को दे दी तथा वह अपनी सम्पत्ति को दानादि कार्य में खर्च करने लगा।

इधर मणिनागदत्त सुकेतु के प्रभाव को न सह सकने के कारण अधिक धन प्राप्त करने की भावना से तपश्चरण पूर्वक नागों की आराधना करने लगा। तब उत्पल देव ने (नागदत्त का पुत्र भवदत्त जो मरकर देव हुआ था) पूछा नागदत्त! तुम साधना क्यों कर रहे हो, तब नागदत्त बोला अधिक धन पाने के लिए। इस पर उत्पल देव ने कहा कि तू पुण्य हीन है तुझे मैं धन नहीं दे सकता। तब मणिनागदत्त बोला तो सेठ सुकेतु को मार दे, तब देव बोला वह पुण्यात्मा है उसे मारना कठिन है। फिर भी मैं बंदर बन जाता हूँ, तब तू मुझे उसके पास छोड़ दे। उससे कहना यह देव है, इससे जो चाहो सो काम कराओ, काम न बताने पर मार देता है। यदि तुम इसे चाहो तो ले लो। मणिनागदत्त ने वैसा ही किया तब सेठ सुकेतु ने उसे ले लिया और उससे अनेक जिनालयों से युक्त बहुत ही सुन्दर नगर बनवाया राजा की आज्ञा से स्वयं अपना राज्याभिषेक कराकर रहने लगा। देव ने और काम माँगा तब कहा कि मेरे आँगन में बहुत बड़ा खम्भा गाढ़कर, तथा लोहे की सांकल से अपना गला बांधकर

तब तक चढ़ों उतरो जब तक कि मैं दूसरा काम तुम्हें न बताऊँ। तब वह बन्दर भेषधारी उत्पल देव वहाँ से भाग गया।

सेठ सुकेतु दीर्घकाल तक राज्य कर, सफेद बाल को देखकर, विषय भोगों से विरक्त हो गया अपने पुत्र को राज्य दें कर श्री भीम नामक भट्टारक के समीप में जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और कठोर साधना कर मोक्ष को प्राप्त किया। नगर के अन्य जन भी दीक्षा ले यथा योग्य स्वर्गों को प्राप्त हुए।

इस प्रकार एक बार ही मुनि को दान देने वाला सेठ सुकेतु मोक्ष को प्राप्त हुआ तो क्या जो भव्य जीव नित्य मुनियों को दान देता है, क्या वह मोक्ष को प्राप्त नहीं करेगा? अर्थात् अवश्य ही करेगा।

किं न प्राप्नोति देही जगति खलु सुखं दाता बुध युतो,
रूढः श्रेष्ठी सुकेतुर्जित भय कुपितोऽजैषीत् स भुवने।
दानादेवोपसर्गं तदनु सुतपसा मोक्षं समगमत्।
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये।।5।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- सत्पात्र को दान देने वाला दाता मनुष्य विद्वानों से संयुक्त होकर कौन से सुख को प्राप्त नहीं होता है? अर्थात् वह सब प्रकार के सुखों को प्राप्त होता है। देखो! लोक में सुप्रसिद्ध उस सुकेतु सेठ ने भय और क्रोध को जीतकर, देव कृत उपसर्ग को भी जीता और फिर अन्त में श्रेष्ठ तपश्चरण करके मोक्ष को भी प्राप्त हुआ। इसलिए निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों का कर्तव्य है कि वे नित्य उत्तम मुनि लिए आहारादि चार प्रकार दान दें।

तृतीय कथा

आरम्भक द्विज

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में पद्मपुर नाम का एक नगर था। वहाँ शंख दारुण नामक भ्रद परिणामी धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था, उसके आरम्भक नामक एक पुत्र था, वह विनयी, सुशील, धर्मात्मा एवं विद्वान था। वह भद्र मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण बहुत से शिष्यों को पढ़ाता हुआ अपना काल यापन कर रहा था। एक दिन आहार चर्या के लिए आते हुए किन्हीं मुनिराज को विधिपूर्वक पड़गाहन कर, दाता के सप्त गुणों से युक्त हो, उसने नवधा भक्ति पूर्वक आहार दिया। मुनिराज आहारोपरान्त धर्मोपदेश दे साधना करने हेतु वन को चले गये। इस आहार दान से इसने बहुत आनन्द का अनुभव किया तथा वह अपना मनुष्य भव सार्थक मानने लगा। काल क्रम से इस दान के फल से भद्र मिथ्यादृष्टि होने से, पूर्व में बांधी मनुष्य आयु के कारण उत्तम भोग भूमि में आर्य हुआ, वहाँ तीन पल्योपम काल तक उत्तमोत्तम भोगों को भोग कर स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ। आयु पूर्ण कर वहां से च्युत हो धातकी खण्ड द्वीप के अन्तर्गत चक्रपुर नगर के राजा हरिवर्मा व रानी गान्धारी के व्रत कीर्ति नाम का पुत्र हुआ, संयम साधना कर स्वर्ग गया। वहां अपनी आयु पूर्ण कर, वहाँ से च्युत हो, जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्र के अन्तर्गत मंगलावली देश में स्थित रत्न संचय पुर के राजा अभय घोष और रानी चन्द्रानना के पयोबल नाम का पुत्र हुआ। साधना कर पुनः समाधि मरण कर स्वर्ग में गया। वहाँ से च्युत हो इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के पृथ्वीपुर में राजा जयंधर रानी विजया के जयकीर्ति नाम का पुत्र हुआ। वहाँ सकल संयम को अंगीकार करके एवं समाधि सहित मरण कर अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ।

वहाँ अपनी तेतीस सागर की आयु धर्म ध्यान के साथ एवं तत्त्व चर्चा में व्यतीत कर, वहाँ से च्युत हुआ। तब इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ-आर्य खण्ड की अयोध्या नगरी में राजा जितशत्रु के भाई विजय सागर (अजित नाथ तीर्थंकर के चाचा) और विजय सेना रानी के सगर नाम का पुत्र हुआ।

यह द्वितीय चक्रवर्ती राजा था। भरत चक्रवर्ती के समान इसने छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर नौ निधि, चौदह, रत्न, छयानवे हजार रानियों एवं अपरिमित वैभव का भोक्ता हुआ। इसके चरणों में बत्तीस हजार मुकुट बद्ध राजा नमस्कार करते थे। इस पर ३२ चंवर ढुराये जाते थे। पूर्व संस्कारों के फलस्वरूप यह धर्मात्मा, प्रजावत्सल, न्याय प्रिय एवं कुशलतम शासक था।

एक दिन इसके साठ हजार पुत्रों ने आकर निवेदन किया कि आप हमें किसी कार्य को करने का आदेश दे, यदि आप आदेश नहीं देते हैं तो हम भोजन भी नहीं करेंगे। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को योग्य होने पर कुछ न कुछ कार्य अवश्य ही करना चाहिए। बिना परिश्रम के किया गया भोजन विष तुल्य होता है, व्यक्ति आलसी बन जाता है, प्रमाद उत्थान का सबसे बड़ा प्रबल शत्रु है अतः सदैव पुरुषार्थ करते रहना चाहिए क्योंकि बिना पुरुषार्थ के भाग्य का भी निर्माण नहीं होता है पुरुषार्थ हीन मात्र भाग्यवादी पतन को प्राप्त हो जाते हैं।

तब चक्रवर्ती ने कहा कि मेरे लिए दुःसाध्य कार्य कुछ भी नहीं है सब कार्य सुलभ हैं, अतः तुम लोगों के लिए आज्ञा देने को कुछ कार्य ही नहीं है। किन्तु उन साठ हजार पुत्रों ने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा तब सगर चक्रवर्ती ने कहा यदि आपका कुछ कार्य करने का ही आग्रह है तो आप लोग प्रथम चक्रवर्ती भरतेश के द्वारा कैलाश पर्वत पर बनवाये गये ७२ जिनालयों की सुरक्षा हेतु उसके चारों ओर खाई खोदकर आओ। तब चक्रवर्ती की आज्ञा से उन्होंने कैलाश पर्वत के चारों ओर जल से परिपूर्ण खाई खोद दी। दण्ड रत्न से पाताल तक गहरी पृथ्वी खोदने से क्रोधित हुए धरणेन्द्र ने सब पुत्रों को भस्म कर दिया।

पूर्व में कोई सगर चक्रवर्ती के द्वारा दिये गये पंच नमस्कार मंत्र के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। उसका उस समय आसन कम्पित हुआ। इससे वह चक्रवर्ती के पुत्रों के मरण को जानकर ब्राह्मण के भेष में उस सगर चक्रवर्ती को सम्बोधित करने के लिए आया।

तदनुसार उससे सम्बोधित होकर सगर चक्रवर्ती ने भागीरथ के लिए राज्य देकर अजित नाथ तीर्थंकर के समवशरण में जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। तथा तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार वह मिथ्यादृष्टि आरम्भक ब्राह्मण भी एक बार मुनि के लिए आहार दान देकर जब स्वर्ग के वैभव और चक्रवर्ती की उत्तम विभूति का भोक्ता हुआ और अंत में जिनदीक्षा लेकर मुक्तिरमा का पति अर्थात् सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ है। तो क्या जो विवेकी भव्य! या सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम पात्रों या मुनिराजों को आहारादि दान देंगे, वे मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे?

अर्थात् अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

नोटः- इस कथा को विस्तार से जानने के इच्छुक महानुभावों को प० पू० रविषेणाचार्य कृत पद्म पुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

श्रीमानारम्भकाख्यो द्विजकुल विमलश्चारू प्रवचनो,
दत्ताद्दानादनूनं सुखममल मलं दैवं नृ भवजम्।
भुक्त्वाभूच्चक्रवर्ती जितरिपुगणकः ख्यातोहि सगरः,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये।।6।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- निर्मल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर मधुर भाषण करने वाला श्रीमान् आरम्भक नाम का ब्राह्मण मुनि के लिये दिये गये आहार दान के प्रभाव से देव और मनुष्य भव सम्बन्धी महान् निर्मल सुख का भोक्ता हुआ और तत्पश्चात् वह समस्त शत्रु समूह को जीतने वाला सगर नाम से प्रसिद्ध द्वितीय चक्रवर्ती हुआ।

इसलिए निर्मल गुण समूह के धारक भव्य जीवों को मुनिराजों व चतुर्विध संघ या सत्पात्रों के लिए चार प्रकार का दान देना चाहिए।

चतुर्थ कथा

राजा धारण

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में अयोध्या नाम की नगरी है वहां प्रजा वत्सल, धर्मात्मा, न्याय प्रिय, सदाचार, नैतिकता में अग्रणी, महा पराक्रमी, सत्यवादी राजा दशरथ राज्य करते थे। एक समय महेन्द्र नामक उद्यान में सर्वभूत हितशरण्य नामक महातपस्वी मुनिराज पधारे। वनपाल से मुनि आगमन का शुभ समाचार सुनते ही राजा अपने समस्त नगरवासियों के साथ उनकी वन्दना हेतु गये। वहां वन्दना के उपरान्त धर्मोपदेश सुनकर उसने अपने पूर्वभव पूछे। महाराज श्री ने उनके पूर्व भव इस प्रकार बताये। इसी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखड के कुरूजांगल देशांतर्गत हस्तिनापुर नगर में उपास्ति नाम का राजा राज्य करता था, वह कुटिल परिणामी एवं तीव्र मिथ्यादृष्टि था अतः मुनिदान का निषेध करने से तिर्यंचों की असंख्यातासंख्यात पर्यायों को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कषाय के मंदोदय से अर्जित किसी पुण्य कर्म के उदय से चन्द्रपुर के राजा चन्द्र और धारणी के धारण नाम का पुत्र हुआ। वहाँ उसने दाता के सप्त गुण व नवधा भक्ति से युक्त हो दिगम्बर मुनि के लिए आहार दान देकर धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरू सम्बन्धी देव कुरू में उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से स्वर्ग गया। वहाँ अपनी आयु को धर्मध्यान व तत्त्व चर्चा में पूर्णकर वहाँ से च्युत हुआ। तब जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा अभय घोष और रानी वसुन्धरी के नन्दिवर्धन नाम का पुत्र हुआ। इस भव में उसने जिनदीक्षा ले कठिन तप व साधना की एवं वह समाधि पूर्वक मरण कर ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ दीर्घकाल तक स्वर्गीय सुखों को भोगकर अपनी आयु के पूर्ण होने पर च्युत हुआ और जम्बूद्वीप के अपर विदेह में स्थित

विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर शशिपुर के राजा रत्नमलि के सूर्यज नाम का पुत्र हुआ।

एक समय रत्नमालि ने सिंह पुर के राजा वज्र लोचन के ऊपर चढ़ाई की। किन्तु इस बीच एक देव ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। इसका कारण पूछने पर वह देव इस प्रकार बोला-

इस विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर स्थित गान्धार पुर के राजा श्रीभूति के एक सुभूति नाम का पुत्र था। उस राजा के मंत्री का नाम उभयमन्यु था। राजा श्रीभूति ने कमल गर्भ भट्टारक के समीप में व्रतों को अंगीकार किया। किन्तु उस मंत्री के प्रभाव में आकर वह उनका पालन नहीं कर सका। और वे यों ही नष्ट हो गये। इस पाप के प्रभाव से वह मंत्री मरकर हाथी हुआ। उसे राजा ने पट्टवर्धन (मुख्य हाथी) बनाया।

उक्त हाथी को कमल गर्भ मुनि के दर्शन से जाति स्मरण हो गया। तब उसने व्रतों को ग्रहण कर लिया, और वह मरकर राजा सुभूति और रानी योजन गन्धी के अरिंदम नाम का पुत्र हुआ। उसने उन मुनि के समीप में दीक्षा ले ली। इस प्रकार तप के प्रभाव से वह मरकर शतार स्वर्ग में देव हुआ, जो मैं हूँ। इधर वह श्रीभूति राजा मरकर मन्दरारण्य में मृग हुआ। तत्पश्चात् वह काम्भोज देश में कलिंजम भील हुआ। वह समयानुसार मर कर शर्करा प्रभा पृथ्वी में नारकी हुआ। उसे मैंने जाकर प्रबोधित किया। इससे वह प्रबुद्ध होकर उक्त पृथ्वी से निकल कर तुम रत्नमालि हुए हो। इस प्रकार उक्त देव से अपने पूर्व भवों का वृत्तांत सुनकर वह रत्नमालि आनन्द के लिए राज्य देकर सूर्यज पुत्र के साथ रत्न तिलक मुनिराज के पास दिगम्बर मुनि हो गया। और संयम साधना के प्रभाव से, समाधिमरण कर वह शुक्र कल्प में देव हुआ। साथ में वह सूर्यज भी उसी कल्प में देव हुआ।

इसके पश्चात् सूर्यज का जीव उक्त कल्प से आकर तुम और दूसरा रत्नमालि जनक हुआ है। अरिंदम का जीव जो शतार स्वर्ग में देव हुआ था वहाँ से आकर जनक का भाई कनक हुआ है। वह अभयघोष तप के प्रभाव से ग्रैवेयक में उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर हम (सर्वभूत हित शरण्य) हुए हैं। इस प्रकार उन सर्वभूत हित शरण्य मुनि के द्वारा प्रस्थापित अपने पूर्व भवों को सुनकर राजा दशरथ उन्हें नमस्कार करके अपने नगर में वापिस आ गये। और अपराजिता आदि पट्टरानियों, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न पुत्रों एवं अन्य बन्धु जनों के साथ दीर्घकाल तक महाविभूति से परिपूर्ण राज्य का भोगोपभोग करता हुआ स्थित रहा।

एक दिन कैकयी द्वारा वरदान माँगने पर वैराग्य को प्राप्त हो भरत का राज्याभिषेक कर जिनदीक्षा को सर्वभूत हित शरण्य मुनि से अंगीकार किया। और

साधना करके अंत में उत्तम गति को प्राप्त हुए।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि भी वह धारण राजा सत्पात्र दान के प्रभाव से जब ऐसा वैभवशाली राजा हुआ है तब क्या उस पात्र दान के प्रभाव से सम्यग्दृष्टि एवं विवेकी जीव वैसा न होगा?

अर्थात् अवश्य होगा।

नौटः- इसकी कथा विस्तार के साथ रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण से पढ़ना चाहिए। यहाँ अति संक्षेप में लिखी है।

आसीद्यो धारणाख्यः क्षिति भृदनुपमश्चन्द्राख्य नगरे,
दत्त्वा दानं मुनिभ्यस्तदमल फलतो देवादि कुरुषु।
भुक्त्वा नूनं च सौख्यं नृ सुरगति भवं जातो दशरथ,
स्तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये।।9।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- चन्द्र नामक नगर में जो धारण नाम का अनुपम राजा था वह मुनियों के लिए दान देकर उससे उत्पन्न हुए निर्मल पुण्य के प्रभाव से देव कुरु में उत्पन्न हुआ, तत्पश्चात् मनुष्य गति और देव गति के महान सुख भोगकर दशरथ राजा हुआ है। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से युक्त भव्य जीवों को निरन्तर ही मुनियों के लिए दान देना चाहिए।

पाँचवीं कथा

वसुदेव व सुदेव

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में अयोध्या नाम की नगरी है, जो अनन्तों तीर्थंकरों महापुरुषों के गर्भ, जन्म व दीक्षादि कल्याणकों से परम पुनीत है। जब बीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रत नाथ जी का धर्म प्रवर्तन शासन काल चल रहा था, तब अयोध्या नगरी में अष्टम बलभद्र राजा रामचन्द्र जी एवं अष्टम नारायण लक्ष्मण जी कुशलता पूर्वक राज्य का संचालन कर रहे थे। तब राजा रामचन्द्र की रानी सीता जी (जिनका उन्होंने लोकापवाद के कारण परित्याग कर दिया था) ने वन में महाप्रतापी होनहार, चरम शरीरी युगल पुत्रों को जन्म दिया। जब वे लव-कुश (अनंग लवण व मदनांकुश) यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तब नारद ने उन्हें राम लक्ष्मण जैसे बनने का आशीर्वाद दिया। तब उन्होंने अपनी माँ सीता से पूछा माँ ये राम और लक्ष्मण कौन हैं? तब सीता जी ने पहले तो टालने का प्रयास किया अंत में बताया कि श्री रामचन्द्र जी तुम्हारे पूज्य पिताजी हैं एवं श्री लक्ष्मण जी आपके पूज्य चाचा जी हैं, जो कि वर्तमान में बलभद्र व नारायण पद से सुशोभित हो अयोध्या में राज्य कर रहे हैं। इस पर लव-कुश ने पूछा कि पिताजी जब महलों में रहते हैं तो आप यहाँ जंगल में क्यों रहती हैं? तब सीता जी ने न चाहते हुए भी प्रिय पुत्रों के अति आग्रह से पूर्ण वार्ता बतानी पड़ी। जिसे सुनकर दोनों बहुत क्रोधित हो युद्ध करने के लिए तत्पर हुए। नारद व सीता जी विमान से पहुँचे। श्री राम व लक्ष्मण जी के साथ लव-कुश का युद्ध हुआ जिसमें अनंग लवण व मदनांकुश विजय को प्राप्त हुए तब राम ने अनंग लवण व मदनांकुश को स्वीकार कर लिया, किन्तु सीता जी को स्वीकार करने के पूर्व अग्नि परीक्षा देने की शर्त रखी, सीता जी ने निःसंकोच अग्नि परीक्षा दी जिसमें वे सफल हुईं। श्री राम ने

सीता जी से महलों में चलने को कहा तब सीता जी ने महलों में चलना स्वीकार न कर सबसे क्षमा-याचना कर दीक्षा लेने का निश्चय किया।

महेन्द्र उद्यान में स्थित सकल भूषण केवली के समवशरण में पृथ्वीमति आर्यिका माता जी के चरणों की शरण/आश्रय में आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। तब श्री रामचन्द्र जी परिवार सहित सीता जी को लौटाने हेतु गये। किन्तु सकलभूषण केवली भगवान् के निकट पहुँचते ही उनका सीता विषयक मोह नष्ट हो गया और वे केवली भगवान् एवं अन्य मुनियों की पूजा कर एवं समस्त आर्यिकाओं की वंदना कर मनुष्यों के कोठे में बैठकर धर्मोपदेश सुनने लगे। इसके उपरान्त जब विभीषण ने राम चन्द्र व लव-कुश के पूर्व भव पूछे तब सकल भूषण केवली ने उनके पूर्वभव इस प्रकार कहे।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में काकन्दी नामक नगरी में राजा रतिवर्धन व रानी सुदर्शना के प्रीतिंकर व हितंकर नाम के दो पुत्र थे। इस राजा के पुरोहित का नाम सर्वगुप्त व इसकी स्त्री का नाम विजयावली था। एक समय राजा रतिवर्धन ने सर्वगुप्त पुरोहित को बंधन में डाल दिया तब पुरोहित की स्त्री विजयावली राजा के पास निवेदन करने आयी। परन्तु राजा की सुन्दरता को देखकर वह उस पर मुग्ध होती हुई बोली कि आप मुझे स्वीकार करो। यह सुनकर राजा रतिवर्धन के कहा कि तुम मेरी बहिन हो, तुम्हें मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूँ। तब वह क्रोधित होकर वापिस चली गई। कुछ दिनों बाद राजा ने सर्वगुप्त पुरोहित को बन्धन मुक्त कर वही पूर्व का पद दे दिया। तब विजयावली ने अपने पति से कहा कि राजा उस समय मेरा शील भंग करने को उद्यत हो गया था किन्तु शील भंग नहीं कर सका, मैं बड़ी मुश्किल में अपने शील की रक्षा कर सकी। तब पुरोहित ने विचार किया-

राजा ने प्रथम तो मुझे बंधन में डाला, फिर मेरी पत्नी का शील भंग करने की दुश्चेष्टा की। इस प्रकार से दो अपराध किये हैं। यह सोचकर सर्वगुप्त पुरोहित ने मंत्री, सेनापति आदि को अपने पक्ष में मिलाकर रात्रि में राजभवन को चारों ओर से घेर लिया। तब राजा और उसके दोनों पुत्र रानी सुदर्शना को अंतःपुर में छोड़ कर तलवार के बल से बाहर निकले। तब काशिपुर के राजा काशिपु ने उनका स्वागत किया। पुनः राजा रतिवर्धन ने काशिपु राजा की सेना लेकर युद्ध किया जिसमें सर्वगुप्त पुरोहित को बांध लिया, कुछ समय तक राजा रतिवर्धन ने अपने समस्त परिवार सहित धर्म ध्यान व श्रावक के षट् आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हुए राज्य किया। एक दिन किसी निमित्त को पाकर राजा रतिवर्धन वैराग्य को प्राप्त

हुआ और अपने दोनों पुत्रों के साथ दीक्षित हो गया। उसके दोनों पुत्र दुर्द्धर तप करके उपरिम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए। वहाँ से च्युत होकर वे दोनों शाल्मलीपुर में ब्राह्मण रामदेव के वसुदेव और सुदेव नाम के पुत्र हुए। यहाँ इन्होंने एक दिन किसी महातपस्वी मुनिराज को परम विशुद्धि पूर्वक, नवधा भक्ति व दाता के सर्वगुणों से युक्त हो आहार दान दिया, जिसके प्रभाव से ये उत्तम भोग भूमि में आर्य हुए। वहाँ अपनी तीन पल्य की आयु पूर्ण करके ईशान स्वर्ग में देव हुए। देव अवस्था में कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना, तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों में साक्षात् पूजन भक्ति कर, अपनी आयु का पूर्णकाल भोगकर वहाँ से च्युत हुए। और अयोध्या नगरी में अष्टम बलभद्र राम और सीता के अनंग लवण एवं मदनांकुश हुए हैं ये दोनों चरम शरीरी हैं, इसी भव से मुनि दीक्षा ले पिता की तरह समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार एक बार दिये गये सत्पात्र दान के प्रभाव से वसुदेव व सुदेव नामक ब्राह्मण भोग भूमि व स्वर्ग के सुखभोग कर श्री राजा रामचन्द्र जी के चरम शरीरी पुत्र हुए तथा मोक्ष प्राप्त किया, तब भला सुशील, विवेकी सम्यक्दृष्टि सत्पात्र दान के प्रभाव से क्या वैसा नहीं होगा? अर्थात अवश्य होगा।

विप्रौ यो दत्त दानौ शममर कुजजं दैवं च पृथु तत्,
संजातौ जारू कीर्ति जित सकल रिपु वीरौ सुविदितौ।
सेवित्वा राम पुत्रौ तदनु लव कुशौ बुद्धाखिल मतौ,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये।।8।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- जिन दो ब्राह्मणों ने मुनि के लिए दान दिया था वे भोग भूमि में कल्पवृक्षों से उत्पन्न सुख को तथा देव गति के विपुल सुख को भोगकर तत्पश्चात् लव व कुश नाम से प्रसिद्ध रामचन्द्र के दो वीर पुत्र हुए। समस्त शत्रुओं को जीत लेने के कारण उनकी पृथ्वी पर निर्मल कीर्ति फैली। (तथा समस्त कर्मरूपी शत्रुओं को नाश कर मोक्ष के पद को प्राप्त किया) इसलिए निर्मल गुणों के समूह से युक्त भव्य जीवों को निरन्तर ही उत्तम मुनियों के लिए आहारादि चार प्रकार का दान देना चाहिए।

छठवीं कथा

इन्धक व पल्लव

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में किष्किन्ध पर्वत पर किष्किन्ध पुर नाम का प्रसिद्ध नगर था। वहाँ पर वानर चिन्ह की ध्वजा से सुशोभित वानर वंशीय राजा सुग्रीव राज्य करता था। राजा सुग्रीव पूर्व भव में प्राप्त धार्मिक संस्कारों के वशीभूत होने से धार्मिक, सुधी एवं प्रजा वत्सल था। अयोध्या के राजा रामचन्द्र जी जब अपने भाई लक्ष्मण व पत्नी सीता सहित पिता की आज्ञा पालन हेतु वनवास आये तब पूर्वभव के अनुराग के कारण लंका के राजा रावण ने सीता का हरण कर लिया। तब किष्किंधपुर के राजा सुग्रीव ने पूर्व भव की मित्रता व उपकार का स्मरण कर तथा वर्तमान में धर्मानुरागी व्यवहार को देख उनसे पुनः मित्रता कर ली। तथा सुग्रीव के अनुज नल और नील ने भी राम की सेवा में सेनापति बन रावण के साथ युद्ध किया। इस युद्ध में युवराज नल और नील ने रावण के सेनापति हस्त-प्रहस्त को मार डाला। इस सम्बन्ध में केवली भगवान् से पूछने पर कि 'नल, नील ने हस्त और प्रहस्त को इस भव के बैर के कारण मारा था कि पूर्व भव के बैर के कारण तब केवली भगवान् ने पूर्व भव का बैर का कारण बताते हुए यों कहना प्रारंभ किया।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के अन्तर्गत कुशस्थल नाम का ग्राम था। वहाँ इन्धक और पल्लव नाम के दो भद्र परिणामी, मंद कषायी ब्राह्मण रहते थे। उनकी अति सरलता व अति सहजता को देख लोग उन्हें मूर्ख कहते थे। उनके ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम भी कम था। विद्या उन्हें परिश्रम करके भी प्राप्त न हो सकी। क्योंकि उन्होंने पूर्व भव में ज्ञानावरणी कर्म का जो बन्ध किया था सो वह तो इन्हीं को ही भोगना था। स्वयं कृत कर्मों का फल भी स्वयं को ही भोगना पड़ता है, और कोई उसमें भागीदार नहीं होता। एक दिन उनके पुण्य के उदय से उन्हें एक यथाजात दिगम्बर जैन मुनि के दर्शन हुए। उन्होंने उनसे धर्मोपदेश सुन अपने पूर्व भव भी

पूछे। जिनको सुनकर उन्हें अपने द्वारा कृत पापों के प्रति पश्चाताप भी हुआ।

धर्म के प्रति रुचि भी हुई, किन्तु वह सम्यक्त्व दीर्घकाल तक टिक नहीं सका। जैसे पर्वत के शिखर पर रखा हुआ दीपक आंधी और तूफान में शीघ्र ही बुझ जाता है, उसी प्रकार उपशम सम्यक्त्व भी अन्तर्मुहूर्त में नष्ट हो जाता है। एक दिन घर पर पधारे दिगम्बर मुनिराज को अंतरंग की भाव विशुद्धि के साथ पड़गाहन पर भक्ति सहित आहार दिया। जिससे उन्होंने सातिशय पुण्य का उपार्जन किया।

उसी नगर में रहने वाले दो कृषक बन्धुओं के साथ साझेदारी में उन्होंने कृषि करना प्रारंभ किया। जब खेती की फसल आ चुकी तब राजा को कर चुकाने के विषय में कृषकों और इन्धक व पल्लव का झगड़ा हो गया। कषाय के आवेश में आकर दोनों कृषकों ने इन्धक और पल्लव को मार डाला। मुनिराज को दिये गये आहार दान व कषाय की मंदता के प्रभाव से वे मरणोपरान्त मध्यम भोगभूमि में आर्य हुए। वहां इन्होंने दश प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त दश प्रकार के भोगोपभोगों को दो पल्य तक भोगा, आयु पूर्ण होने पर ये दोनों स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से च्युत होकर, किष्किंधपुर के राजा सुग्रीव के नल व नील नाम के भाई हुए हैं।

उधर वे दोनों भाई मृत्यु को प्राप्त हो कालंजर वन में खरगोश हुए पुनः अनेकों बार तिर्यच पर्यायों को धारण किया। पुनः मनुष्य गति को पाकर सम्यक्त्व से रहित तापस हुए। वहाँ नाना प्रकार का कुतप करके मरणोपरान्त ज्योतिर्लोक में देव उत्पन्न हुए। वहाँ अपनी आयु को पूर्ण करके विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में राज्य करने वाले राजा अग्नि कुमार व अश्विनी रानी के हस्त व प्रहस्त नाम के राजपुत्र हुए। बड़े होनहार पराक्रमी, अदम्य साहसी होने से ये रावण की सेना में सेनापति बने और नल-नील के हाथों मारे गये। अतः नल नील ने हस्त-प्रहस्त को पूर्वभव के बैर के कारण मारा है। ऐसा केवली भगवान ने कहा! रावण की मृत्यु के बाद नल और नील युवराजों ने दीर्घ काल तक राज्य अवस्था में उत्तमोत्तम भोगों को भोगकर किसी दिन राज्य वैभव से विरक्त हो अपने पुत्रों को राज्य भार सौंपकर केवली भगवान् के चरण सानिध्य में उभय परिग्रह का त्याग कर जिनदीक्षा ले दुर्द्धर तप करने लगे। ध्यान रूपी अग्नि में प्रथमतः घातिया कर्मों को जलाकर केवल ज्ञान को प्राप्त किया। अनन्तर अघातिया कर्मों का भी क्षय करके मांगी तुंगी से निर्वाण पद को प्राप्त किया।

इस प्रकार सम्यक्त्व रहित और मूर्ख भी वे दोनों ब्राह्मण एक बार दिये गये मुनिदान के प्रभाव से दोनों गतियों के सुख को भोगकर महाविभूति से संयुक्त चरम शरीरी होते हुए जब मुक्ति को प्राप्त हुए हैं तब क्या मुनि महाराज को भक्ति पूर्वक

दिये आहारादि चार प्रकार के दान के प्रभाव से सम्यक्दृष्टि वैसी अवस्था को प्राप्त नहीं होगा? अर्थात् परंपरा से अवश्य ही मोक्ष अवस्था को प्राप्त करेंगे।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को प०पू० आचार्य भगवान् रविषेणाचार्य कृत पदम पुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

भुक्त्वा भो भोग भूमौ सुर कुज जनितं सौख्यं च दिविजं,
दत्तादाहार दानात् द्विज-वर तनयौ मूर्खावपि ततः।
जातौ सुग्रीव बन्धू नल तदनुजकौ रामस्य सचिवौ,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये ।।7।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- ब्राह्मण के दो मूर्ख पुत्र मुनि के लिए दिये गये आहार दान के प्रभाव से, भोग भूमि में कल्पवृक्षों से उत्पन्न सुख को तत्पश्चात्, स्वर्ग के सुख को भोगकर सुग्रीव के नल और नील के रूप में बंधु हुए हैं जो कि रामचन्द्र के मन्त्री थे। (इसी भव में दुर्द्धर तप करके समस्त कर्मों का नाश कर निर्वाण सुख को प्राप्त हुए हैं) इसलिए उत्तम गुणों के समूह से युक्त भव्य जीवों को मुनि के लिए (आहारादि चार प्रकार का) दान निरंतर ही देना चाहिए।

सातवीं कथा

यक्षिल पुत्री (यक्ष देवी)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के सौराष्ट्र देश की द्वारावती नगरी में नवमें नारायण श्री कृष्ण राज्य करते थे। तब बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामी जी संसार शरीर भोगों से विरक्त हो, जिनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण कर दुर्द्धर तप कर के चार घातिया कर्मों को क्षय कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर चुके थे। नवमें बलभद्र-बलराम और नारायण श्री कृष्ण उनके धर्मोपदेश सुनने कई बार गये। और उनके माध्यम से सत्य धर्म, आध्यात्मिक ज्ञान व तत्त्वार्थ बोध को प्राप्त किया। एक बार नारायण श्री कृष्ण अपने बड़े भाई बलराम व परिवार के साथ ऊर्जयन्त पर्वत पर भगवान् नेमिनाथ की पूजा वंदना व धर्मोपदेश सुनने गये। उनकी वंदना कर वे मनुष्यों की सभा में बैठ गये। तभी श्री कृष्ण की आठ पट्रानियों, (सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, गान्धारी, पदमावती) में से सुसीमा नाम की पटट्रानी ने भगवान् नेमिनाथ के प्रमुख गणधर वरदत्त स्वामी से अपने पूर्व भवों के सम्बन्ध में पूछा तब वरदत्त स्वामी ने इस प्रकार पूर्व भवों का वर्णन किया।

धातकी खण्ड द्वीप के अन्तर्गत पूर्व मेरू सम्बन्धी पूर्व विदेह में मंगलावती नाम का देश है। उसके अन्तर्गत रत्न संचयपुर नगर में विश्वसेन नाम का राजा राज्य करता था। यह राजा धर्मज्ञ, न्याय प्रिय, नीति सम्पन्न, सर्व कलाओं में निपुण एवं प्रजा वत्सल था उसकी धर्म वत्सला अर्द्धांगिनी का नाम अनुंधरी था। इस राजा का शुभ चिन्तक, शास्त्र का मर्मज्ञ एवं प्रजा हितेषी सुमति नाम का मंत्री था। एक बार राजा विश्व सेन का अयोध्या के राजा पद्मसेन के साथ किसी कारण वश महायुद्ध हुआ। जिसमें रत्नसंचय पुर नगर का राजा युद्ध में ही वीर गति को

प्राप्त हो गया। राजा की मृत्यु के बाद रानी अनुंधरी इष्ट वियोग जन्य आर्तध्यान में संलग्न हुई, तब सुमति नाम के मंत्री ने रानी अनुंधरी को कई बार सम्बोधन दिया एवं धर्मध्यान में संलग्न होने की शुभ प्रेरणा दी। मंत्री के द्वारा बार-बार प्रेरणा देने पर रानी अनुंधरी ने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये। श्रद्धा रहित होने से उसने उन व्रतों का भाव रहित, मात्र द्रव्य से ही सातिचार पालन किया। किन्तु आर्तध्यान छूट गया। जिससे वह आयु के अंत में मरकर विजय द्वार के ऊपर स्थित विजय देव की ज्वलनवेगा नामकी देवी उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् वह अनेक योनियों में परिभ्रमण करके जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में रम्यावती देश के अन्तर्गत शीलग्राम में ग्रामकूट यक्षिल और देव सेना दम्पत्ती के यक्ष देवी नाम की पुत्री हुई। एक दिन वह पूजा के उपकरण लेकर यक्ष की पूजा के लिए जा रही थी। मार्ग में उसने धर्म सेन मुनिराज के साथ अनेकों मुनियों के भी दर्शन किये। दर्शनोपरान्त उसने परम पूज्य धर्ममूर्ति धर्मसेन मुनिराज से धर्मोपदेश सुना उस धर्मोपदेश का उस पर बहुत अच्छा असर हुआ, सो वह यक्ष पूजा को छोड़कर मुनियों की अर्चना कर उन्हें आहार दान देने के लिए तत्पर हुई। उसने दिगम्बर मुनि वृन्दों को नवधा भक्ति से युक्त हो आहार दान दिया। और आहार दान देकर उसने अपने आप को कृत्य-कृत्य माना। एक दिन वह अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए विमल पर्वत पर गई। वहाँ असामयिक वर्षा होने लगी, वर्षा बहुत जोरों से हुई, जिससे वह भयभीत हो एक गुफा में प्रविष्ट हुई। जहाँ उसे एक सिंह ने भक्षण कर लिया। इस प्रकार मरण को प्राप्त हुई वह यक्ष देवी हरि वर्ष क्षेत्र में उत्पन्न हुई। पश्चात् वहाँ से वह ज्योतिर्लोक में ज्योतिषी देव की देवी हुई। वहाँ से भी अपनी आयु को पूर्ण कर च्युत हुई और जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड के पुष्कलावती नामक देश की वीत शोक पुर नगरी में धर्मज्ञ, शास्त्रज्ञ, न्याय नीति में कुशल राजा अशोक और रानी श्रीमति के श्री कान्ता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। माता-पिता के संस्कार व पूर्व में अर्जित पुण्योदय के कारण बाल्यावस्था से ही धर्म में रुचिवान हुई और उसने कुमारी अवस्था में ब्रह्मचर्य की साधना करते हुए अल्पवय में ही जिनदत्ता आर्यिका के पास शिक्षा व आर्यिका दीक्षा को अंगीकार किया। साधना करके वह मरणोपरान्त माहेन्द्र स्वर्ग में माहेन्द्र नामक इन्द्र की प्राण बल्लभा हुई। वहाँ अपनी आयु को तीर्थंकरों के कल्याणकों आदि में पूजा करके तथा कृत्रिमा-कृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की वंदना करके पूर्ण किया और वहाँ से मरण कर नवमें नारायण श्री कृष्ण की तुम प्राण बल्लभा हुई हो। इस भव में तुम आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर समीचीन रूप से सम्यक्त्वाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना व तपाराधना का अभ्यास कर समाधि सहित मरण कर कल्पवासी देव

होओगी वहाँ अपनी आयु पूर्णकर यहाँ मण्डलेश्वर पद को प्राप्त कर राज्य सुख भोग दिगम्बर जिनदीक्षा ग्रहण कर, कठिन तप से समस्त कर्मों को क्षय करके मोक्ष प्राप्त करोगी।

इस प्रकार वरदत्त गणधर से अपने पूर्व भवों को सुनकर सुसीमा को बहुत प्रसन्नता हुई, वह हर्षोल्लास से जिन भक्ति में संलग्न हुई।

इस प्रकार विवेक रहित भी वह कुटुम्बिनी कृषक की स्त्री उस दान के फल से इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुई है तो क्या जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं विवेकी भव्य एवं जैन हैं वे सत्पात्रों को या मुनिवरों को दान देकर क्या ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं करेंगे। अर्थात् अवश्य ही करेंगे। इसकी कथा का विस्तार से हरिवंश पुराण या नेमिनाथ पुराण के माध्यम से स्वाध्याय कर सकते है।

देवी विष्णोः सुसीमा कथमपि भुवने रुद्रस्य तनुजा,
जाता यक्षादि देवी वर गुण मुनये भक्ति प्रगुणतः।
दत्त्वा दानात् सुभोगान् कुरूषु दिवि भुवि प्रभुज्य विदितां,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये ।।11।।66।।

पु.क.को.

नोटः- लोक में क्रूर यक्षिल ग्रामकूट की लड़की यक्ष देवी किसी प्रकार उत्तम उत्तम गुणों से संयुक्त मुनिराज के लिए अतिशय भक्ति पूर्वक आहार दान देकर उस दान के प्रभाव से कुरूओं में, स्वर्ग और पृथ्वी पर उत्तम भोगों को भोग कर कृष्ण की सुसीमा नाम की पटरानी हुई यह सबको विदित हैं इसलिए उत्तम गुणों से संयुक्त भव्य जीवों को सदैव उत्तम मुनियों के लिए दान देना चाहिए।

अष्टम कथा

राजा वज्रजंघ-श्रीमती

जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ पुष्कलावती देश के उत्पल खेट नगर में राजा वज्रबाहु और रानी वसुंधरी राज्य करते थे। ये धर्मात्मा, न्यायप्रिय, प्रजावत्सल, गुणज्ञ दम्पत्ति थे। इन दोनों के वज्र जंघ नाम का पुत्र और अनुन्धरी नाम की पुत्री थी। इसी पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रदन्त चक्रवर्ती और लक्ष्मी मती की पुत्री श्रीमती थी (जो कि पूर्व भव में ईशान कल्प के ललितांग की स्वयंप्रभा नामकी देवांगना थी) पूर्व संयोग वश वज्रजंघ की श्रीमती से एवं वज्रजंघ की बहिन अनुन्धरी की शादी वज्रदंत के पुत्र अमित तेज के साथ हुई। एक दिन कमल में मृतक भ्रमर देख वज्रदंत चक्रवर्ती ने अपने पुत्र अमित तेज आदि एक हजार पुत्रों, साठ हजार स्त्रियों तथा बीस हजार मुकुट बद्ध राजाओं के साथ यशोधर भट्टारक के समीप जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। यह समाचार उत्पल खेट नगर में वज्रजंघ राजा के पास भी पहुँचा। कि अमित तेज का पुत्र पुण्डरीक अभी अल्प वय वाला है वह समीचिन रूप से राज्य का संचालन नहीं कर पा रहा है, अन्य अनार्य देशवासी शत्रु राज्य में उपद्रव कर रहे हैं। यह समाचार पाते ही राजा वज्रजंघ श्रीमती रानी व अपनी चतुरंग सेना के साथ पुण्डरीकिणी को रवाना हुआ। मार्ग में उसने सर्प सरोवर के निकट जंगल में पड़ाव डाला। उस समय वहाँ दमवर और सागर सेन नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज (ये दोनों मुनिराज वज्रसंघ व श्रीमति के ही अंतिम युगल पुत्र थे किन्तु इस बात से राजा वज्रजंघ व श्रीमती दोनों ही अनभिज्ञ थे) आहार चर्या हेतु आये। राजा वज्रजंघ व रानी श्रीमती ने नवधा भक्ति पूर्वक दाता के सप्त गुणों से युक्त हो उन्हें आहार दिया। जिससे वहाँ पंचाश्चर्य भी हुए। उस समय राजा व्रजजंघ का मंत्री मतिवर, आनंद नामक पुरोहित, अकम्पन सेनापति, धनमित्र राजसेठ उस आहार दान की अनुमोदना कर रहे थे। इनके साथ-साथ उस जंगल में स्थित व्याघ्र, शूकर, बन्दर व नेवला इन

जानवरों ने भी उस आहार दान की अनुमोदना की।

राजा वज्रजंघ पुण्डरीक के राज्य को स्थित कर अपने नगर में वापिस आ गया और उसने दीर्घकाल तक न्याय नीति पूर्वक राज्य किया। एक समय रात्रि में शयनागार की व्यवस्था करने वाला सेवक सूर्यकान्त मणिमय धूप घट में कालागुरु को डाल कर खिड़की खोलना भूल गया, जिससे कि शयनागार में सोये हुए व्रजजंघ और श्रीमती उस धूएँ से मृत्यु को प्राप्त हुए। उत्तम भावों से दिये गये उत्तम पात्र दान के फल से वे दोनों जम्बूद्वीप के उत्तर कुरू नामक उत्तम भोग भूमि में आर्य व आर्या हुए। अनुमोदना करने वाले व्याघ्र, शूकर, बन्दर व नेवला के जीव भी पात्र दान की अनुमोदना से वहीं पर आर्य हुए। उत्तम भोग भूमि की तीन पल्य की आयु पूर्ण करके राजा वज्रजंघ का जीव ईशान स्वर्ग के भीतर श्रीप्रभ विमान में श्रीप्रभ देव हुआ, श्रीमती का जीव स्वयंप्रभ विमान में स्वयंप्रभ देव हुआ, तथा व्याघ्र, शूकर, बन्दर व नेवला का जीव भी क्रमशः इसी ईशान स्वर्ग के चित्रांगद विमान में चित्रांगद देव, नन्द विमान में मणिकुण्डल देव, नन्द्यावर्त विमान में मनोहर देव, प्रभाकर विमान में प्रभाकर देव हुए।

श्री धर देव का जीव अपनी आयु पूर्ण करके पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ वत्सकावती देश की सुसीमा नाम की नगरी में राजा सुदृष्टि और रानी सुन्दरी के सुविधि नाम का पुत्र हुआ। स्वयंप्रभ देव (श्रीमती का जीव) सुविधि की मनोरमा नामक की रानी से केशव नाम का पुत्र हुआ। चित्रांगद देव मण्डलीक राजा विभीषण व प्रिय दत्ता के वरदत्त नामक राज पुत्र हुआ, मणिकुण्डल देव मण्डलीक राजा नन्दि सेन व अनन्त मति के वर सेन पुत्र हुआ, मनोहर देव (बन्दर का जीव) मण्डलीक राजा रतिसेन व रानी चन्द्रमती के चित्रांगद हुआ तथा मनोरथ देव (नेवला का जीव) मण्डलीक राजा प्रभंजन व रानी चित्रमाला के शान्तमदन नाम का पुत्र हुआ। आयु के अंत में सुविधि आदि छहों जीवों ने संयम व समाधि सहित मरण कर सुविधि अच्युतेन्द्र एवं केशव वहीं प्रतीन्द्र हुआ शेष चार जीव भी वहीं सामानिक देव हुए।

राजा वज्रजंघ के मंत्री, पुरोहित, सेनापति व राज सेठ (मतिवर, आनंद, अकंपन व धनमित्र) ये चारों ही जैनेश्वरी दीक्षा ले कठोरतम साधना करके नवमें ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए। अच्युतेन्द्र (सुविधि राजा/राजा वज्रजंघ का जीव) वहाँ अपनी आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप सम्बन्धी अपर विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगर के राजा तीर्थंकर कुमार वज्रसेन व रानी श्री कान्ता के वज्रनाभि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा प्रतीन्द्र (केशव/श्रीमती का जीव) इसी नगर में कुबेर

दत्त और अनन्तमती के धन देव नाम का पुत्र हुआ, वरदत्तादि (व्याघ्र, शूकर बन्दर व नेवला के जीव) जो सामानिक देव हुए थे वहाँ से च्युत होकर वज्रसेन व श्रीकान्ता के विजय, वैजयन्त, जयन्त, और अपराजित नामक के पुत्र हुए। तथा मतिवर आदि राजा वज्रजंघ के मंत्री (मतिवर, आनंद, अकंपन, धनमित्र) आदि के जीव भी इन्हीं वज्रसेन व श्रीकान्ता रानी के बाहु, महाबाहु, पीठ व महापीठ नाम के पुत्र हुए। वज्रनाभि के अपरमित वैभव को दीर्घकाल तक भोग कर अपने पिता वज्रसेन तीर्थंकर के पास धनदेव मित्र व विजयादि भाईयों, पाँच हजार पुत्रों, सोलह हजार मुकुट बद्ध राजाओं एवं पचास हजार स्त्रीयों के साथ दीक्षित हुआ। वहाँ वज्रनाभि ने अपने पिता के सानिध्य में दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं को भाकर, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया तथा उत्तम समाधि को प्राप्त कर वज्रनाभि, धनदेव एवं विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, बाहु, महाबाहु, पीठ, महापीठ सभी सर्वार्थ सिद्धि नामक उत्तम विमान में देव हुए शेष मुनि यथा योग्य स्वर्ग व मोक्ष में गये, आर्यिकायें प्रथम स्वर्ग से लेकर सोलह स्वर्ग पर्यंत जाकर स्त्री लिंग को छेदकर देव अवस्था को प्राप्त हुई।

वज्रनाभि का जीव तेतींस सागर तक अहमिन्द्र अवस्था में रहकर वहाँ से च्युत हुआ। इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड की अयोध्या नगरी में जब हुण्डावसर्पिणी काल के तृतीय सुषमा दुषमा नामक काल में चौरासी लाख पूर्व वर्ष तथा ३ वर्ष ८ माह १५ दिन शेष रहे, तब अंतिम कुलकर महाराज नाभिराज और उनकी रानी मरुदेवी के गर्भ कल्याणक के उपरान्त जन्म लिया। पंच कल्याणकों की पूजा को प्राप्त, इस युग के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव हुए तथा वज्रनाभि के छोटे भाई बाहु (जो मतिवर मंत्री, अधो ग्रैवेयक का अहमिन्द्र, बाहु) सवार्थ सिद्धि का अहमिन्द्र वहाँ से च्युत हो ऋषभदेव की प्रथम पत्नी यशस्वती से भरत नाम का पुत्र हुआ जो प्रथम चक्रवर्ती बन मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुआ।

महाबाहु (अकम्पन सेनापति, अधो ग्रैवेयक का अहमिन्द्र, महाबाहु) सर्वार्थ सिद्धि से चयकर प्रथम कामदेव बाहुबली हुआ। पीठ (आनन्द पुरोहित, अधो ग्रैवेयक में अहमिन्द्र, पीठ) सवार्थ सिद्धि का अहमिन्द्र-ऋष .देव का प्रथम गणधर (भरत का छोटा भाई) वृषभ सेन हुआ। महापीठ (धनमित्रसेठ, अधो ग्रैवेयक में अहमिन्द्र, महापीठ) सर्वार्थ सिद्धि से च्युत हो प्रथम मोक्ष गामी पुरुष (भरत का छोटा भाई) अनन्त वीर्य हुआ। विजय (व्याघ्र का जीव, भोग भूमि में आर्य, चित्रांगद देव, वरदत्त, सामानिक देव, विजय) सर्वार्थ सिद्धि से च्युत हो (भरत का अनुज) अनन्त हुआ। वैजयन्त (सूकर का जीव, भोग भूमिया आर्य, मणि कुण्डल देव, वरसेन, सामानिक

देव, वैजयन्त) सर्वार्थ सिद्धि से चयकर (भरत का अनुज) अच्युत हुआ। जयन्त (बन्दर का जीव, भोग भूमिज आर्य, मनोहर देव, मदन सेन, सामानिक देव, जयन्त) सर्वार्थ सिद्धि से चयकर (भरत का अनुज) सुवीर हुआ।

धनदेव (श्रीमती का जीव, आर्या, स्वयंप्रभ देव, केशव, प्रतीन्द्र, धनदेव) सर्वार्थ सिद्धि के चयकर हस्तिनागपुर का राजा श्रेयांस हुआ।

तीर्थंकर ऋषभ देव पंचकल्याणकों के अभ्युदय को प्राप्त हुए तथा शेष नौ जीव भी इनके साथ सर्व कर्मों को नष्ट कर मोक्ष को प्राप्त हुए। इस प्रकार व्याघ्र आदि जीव भी आहार दान की अनुमोदना करके परम विभूति को प्राप्त करके मनुष्य व देवों के उत्तम सुख मोक्ष पद को प्राप्त हुए हैं। तब क्या जो सम्यग्दृष्टि भव्य सत्पात्रों को दान देते हैं वे ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं होंगे अर्थात् अवश्य होंगे।

यहाँ पर यह कथा अत्यंत संक्षेप में कही है, विस्तार से जानने के लिए आदि पुराण/महापुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

ख्यातः श्री वज्र जंङ्घो विगलित तनुका जाताः सुवनिता,
तस्य व्याघ्रो वराहः कपिकुल तिलकः क्रूरो हि नकुलः।
भुक्त्वा ते सार सौख्यं सुरनरभुवने श्री दान फलतः,
तस्माद्दानं हि देय विमल गुण गणै र्भव्यैः सुभुनये।।2।।

पु.क.को.

अर्थः- प्रसिद्ध वज्र जंघ राजा, उसकी पत्नी श्रीमती, व्याघ्र, सूकर, वानर कुल में श्रेष्ठ बन्दर और दुष्ट नेवलाः ये सब मुनि दान के फल से देव लोक और मनुष्य लोक में उत्तम सुख को भोग कर अन्त में शरीर से रहित हुए हैं। (मतिवर, मंत्री, आनंद पुरोहित, अकम्पन सेनापति, धनमित्र सेठ भी उसी समय आहार दान की अनुमोदना करने से वज्र जंघ के साथ ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं) इसलिए निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों को उत्तम पात्रों के लिए नित्य ही (आहारादि चार प्रकार का) दान देना चाहिए।

नवमी कथा

विनयश्री

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड में द्वारावती (द्वारिका) नाम की नगरी थी। यहीं पर बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ का बाल्यकाल व्यतीत हुआ। भगवान् नेमिनाथ स्वामी के गर्भकल्याणक और जन्म कल्याणक ये दो कल्याणक सौरीपुर (बटेश्वर) में हुए जो वर्तमान में आगरा के समीप अतिशय क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। समुद्र विजय व शिवादेवी के पुत्र नेमिनाथ स्वामी में बाल्यावस्था से ही धर्म के अडिग (दृढ़तम) संस्कार रहे। जिससे वे सांसारिक भोग में न फंसकर बाल्यावस्था में ही राजुल को छोड़कर (जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की राजकुमारी राजुल के साथ उनका विवाह होने वाला था किन्तु मार्ग में पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर उनका करुणाभाव जाग्रत हुआ और बारात द्वार पर पहुँची भी नहीं मार्ग में ही सब कुछ छोड़कर) गिरनार पर्वत पर दिगम्बर जिन दीक्षा ले तप को अंगीकार कर लिया।

साधना करने से उन्हें मात्र छप्पन (५६) दिन में केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। एक बार उनके समवशरण में सपरिवार (नेमिनाथ भगवान् के चचेरे भाई श्री कृष्ण) नवमें नारायण श्रीकृष्ण व बलभद्र बलराम जी पहुँचे, पूजा वंदना कर जब मनुष्यों के कोठे में बैठे धर्मोपदेश सुन रहे थे तब पद्मावती नामक श्री कृष्ण की रानी ने वरदत्त नामक गणधर परमेष्ठी से अपने पूर्व भव पूछेः, तथ यह भी पूछा कि किस पुण्योदय से मैं श्री कृष्ण नारायण की पट्टरानी हुई हूँ? तथा कितने भव में मुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी? इसके उत्तर में वरदत्त नामक गणधर परमेष्ठी ने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड के अवन्ति देश में उज्जयिनी नाम की उत्तम नगरी है। जहाँ जिनेन्द्र भगवान् के गगन चुम्बी सहस्त्रों जिनालय विद्यमान हैं, जहाँ के मनुष्य सदैव अपने देव पूजादि षट्कर्तव्यों के पालन करने में संलग्न रहते हैं। वहाँ की प्रजा सब प्रकार से संतुष्ट थी। वहाँ अपराजित

नाम का धर्मात्मा, सुधी, प्रजा वत्सल एवं न्याय प्रिय राजा था। उसकी प्राण प्यारी हृदय वल्लभा का नाम विजया था। जो पति की आज्ञानुसार चलने वाली जिन भक्ति, गुरू सेवा व सद्शास्त्रों के स्वाध्याय में सदैव संलग्न रहती थी। वह धर्म वत्सला, गुण ग्राही, रूप लावण्य से युक्त अनेकों अनुपम गुणों की खान थी। उस दम्पत्ति के विनय श्री नाम की सुशील, धर्मात्मा व सुसंस्कारित कन्या थी। जिसका पाणि ग्रहण हस्तिशीर्ष पुर के राजा हरिषेण के साथ हुआ था।

एक दिन राजा अपराजित की विनय श्री नाम की पुत्री ने (राजा हरिषेण की रानी ने) वरदत्त नाम के मुनिराज के लिए नवधा भक्ति से युक्त हो आहार दान दिया। जिस से उत्पन्न परम विशुद्धि से भोग भूमि की आयु बांधी।

तदनन्तर किसी समय वह रानी विनय श्री राजा हरिषेण के साथ महलों में सो रही थी, कालागरु, चन्दन के धुएँ से कमरा भर गया। (उस दिन सेवक खिड़कियों के दरवाजे खोलना भूल गया था) जिससे राजा हरिषेण व रानी विनय श्री मृत्यु को प्राप्त हुए। विनय श्री रानी आहार दान के पुण्य से हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोग भूमि) में एक पल्य की आयु सहित आर्या हुई तथा वहाँ दश प्रकार के कल्प वृक्षों से प्राप्त उत्तम भोगों को भोगकर आयु के अन्त में च्युत हो (मरण कर) चन्द्र विमान में चन्द्रमा की देवी हुई।

वहाँ की आयु को धर्म ध्यान व दिव्य भोगों के साथ व्यतीत करके च्युत हो, इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड के मगधदेश के शाल्मली खण्ड ग्राम में उस गाँव के मुखिया देविल और उसकी पत्नी जया देवी के पद्मा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसने एक दिन नगर के समीप उद्यान में विराजमान वरधर्म मुनिराज की वंदना कर, धर्मोपदेश सुना तत्पश्चात् अनजान फल न खाने का नियम लिया था। एक दिन चण्डदाण (चण्डबाण) भील ने उस ग्राम के मनुष्यों को पकड़वाकर अपने पास बुलवाया था। तब सभी ग्राम वासियों के साथ पद्मा भी भील बस्ती में पहुँची।

उस चण्डदान नामक भील को राजगृह के राजा सिंह रथ ने मार डाला। तब उक्त (चण्डदान) भील के द्वारा जो बंधन बद्ध किये गये थे वे सब वहाँ से भागकर एक वन के भीतर प्रविष्ट हुए और वहाँ क्षुधा से व्याकुल हो किंपाक फलों को खाकर मृत्यु को प्राप्त हो गये। किन्तु पद्मा ने अनजान फल त्याग नामक व्रत का पालन करने से वे फल नहीं खाये, जिससे केवल उसी के प्राण बचे थे, जिससे वह पद्मा अपने गाँव लौट कर आ गई। वहाँ वह बहुत काल तक रहीं, तत्पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होकर हैमवत् क्षेत्र (जघन्य भोग भूमि) में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर स्वयं प्रभ पर्वत के ऊपर स्थित स्वयं प्रभ देव की देवी हुई। तत्पश्चात् वहाँ से भी

च्युत होकर भरत क्षेत्र के भीतर जयन्त पुर के राजा श्रीधर और रानी श्रीमती के विमल श्री नाम की पुत्री हुई। जिसका विवाह भद्रिल पुर के राजा मेघवाहन के साथ हुआ था। उसे मेघघोष नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् वह पद्मावती आर्यिका के निकट में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से सहस्रार स्वर्ग में इन्द्र की देवी हुई और फिर वहाँ से च्युत होकर तुम हुई हो। इस प्रकार अपने पूर्व भवों को सुनकर पद्मावती अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुई। जब विवेक से रहित मिथ्यादृष्टि भी वह स्त्री (विनय श्री) सत्पात्र को दान देने मात्र से ऐसी विभूति को प्राप्त हुई है (पुनः पद्मावती दीक्षा लेकर स्वर्ग को प्राप्त करेगी, वहाँ अपनी आयु पर्यंत भोगों को भोग कर राजपुत्र हो मोक्ष को प्राप्त करेगी) तब क्या अन्य विवेकी भव्य जीव सत्पात्रों या मुनिराजों को नवधा भक्ति व दाता के सप्त गुणों से युक्त हो दान देने से क्या वैसी विभूति को प्राप्त नहीं करेगा? अर्थात् अवश्य ही प्राप्त करेंगा।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को हरिवंश पुराण ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिए।

गौरी श्री विष्णु भार्याजनि जनविदिता विख्यात विभवा,
पूर्व या वैश्य पुत्री दिविज नृ भवजं सौख्यं ह्यनुपमम्।
भुक्त्वा दानस्य सुफलात्तदनु बहु गुणा सुधर्म विमला,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये।।13।।

पु.क.को.

अर्थः- जो पहले वैश्य की पुत्री नन्दा थी, वह दान के उत्तम फल से देव गति और मनुष्य गति के अनुपम सुख भोग कर तत्पश्चात् निर्मल धर्म को प्राप्त करके बहुत गुणों एवं प्रसिद्ध विभूति से सुशोभित होती हुई, श्री कृष्ण (नवमें नारायण) की पत्नी गौरी हुई है।

इस बात को सब ही जन जानते हैं, इसलिए निर्मल गुण समूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराजों के लिए आहारादि चार प्रकार का दान सदैव देना चाहिए।

दशमी कथा

नन्दा

बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ के समवशरण में उनके चचेरे भाई नारायण श्री कृष्ण व बलराम जी सपरिवार जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना करने एवं धर्मोपदेश सुनने पहुँचे। वहाँ पहुँच कर नारायण श्री कृष्ण की पट्टरानी गौरी ने भगवान् नेमिनाथ के मुख्य गणधर वरदत्त स्वामी को नमस्कार कर पूछा हे प्रभो! मैंने पूर्व भव में ऐसा कौन सा पुण्य रूपी सुकार्य किया था जिससे मैं अन्तिम नारायण श्री कृष्ण की प्राण वल्लभा गौरी हुई हूँ। तब वरदत्त नामक गणधर स्वामी ने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया।

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड में इभपुर (इभ्यपुर) में स्थित सेठ धनदेव के यशस्विनी नाम की पत्नी थी।

एक दिन उसे आकाश में जाते हुए चारण ऋद्धि धारी मुनिराज को देखकर जाति स्मरण हो गया। तब उसने अपनी सखियों को अपने पूर्व भवों के सम्बन्ध में इस प्रकार बतलाया था।

धातकी खण्डद्वीप के पूर्व मेरू सम्बन्धी अपर विदेह क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड के अरिष्ट पुर नगर में एक आनन्द नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम नन्दा था। एक दिन उस नन्दा नामक सेठानी ने अमित गति व सागर चन्द्र नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नवधा भक्ति पूर्वक आहार दान दिया। जिसके प्रभाव से वह नन्दा सेठानी मरणोपरान्त देवकुरू नामक उत्तम भोगभूमि में तीन पल्य की आयु को धारण करने वाली आर्या हुई। वहाँ अपनी आयु (दश प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त उत्तमोत्तम भोगों को भोगा) को पूर्ण कर ईशान स्वर्ग में ऐशानेन्द्र की देवी हुई। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर यहाँ मैं यशस्विनी नाम की कन्या हुई हूँ। इस प्रकार जाति स्मरण से अपने पूर्व भवों को जानकर श्री सुभद्राचार्य के समीप में प्रोषधव्रत को

ग्रहण कर लिया। उस व्रत के प्रभाव से वह मरणोपरान्त सौधर्म स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की देवांगना हुई, अपनी आयु पूर्ण करके वहाँ से च्युत हुई और इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्य खण्ड की कौशाम्बी नाम की नगरी में सेठ समुद्र दत्त व सुमित्रा के धर्ममति नाम की पुत्री हुई।

उस धर्म मति (श्रेष्ठी की पुत्री) ने जिनमति आर्यिका के समीप में जिनगुण सम्पत्ति व्रता को ग्रहण किया, जिस व्रत के प्रभाव से वह मरणोपरान्त शुक्र इन्द्र की देवांगना हुई। फिर वहाँ से च्युत होकर तुम नवमें नारायण श्री कृष्ण की प्राण वल्लभा गौरी हुई हो। तुम भी सुसीमा और गांधारी के समान तृतीय भव में मोक्ष प्राप्त करोगी। इस प्रकार गौरी अपने पूर्व भवों को श्री वरदत्त गणधर भगवान् से सुनकर परम हर्ष को प्राप्त हुई।

इस प्रकार विवेक से रहित भी वह स्त्री नन्दा मुनिराजों को दिये गये आहार दान के प्रभाव से भोग भूमि व स्वर्गों के उत्तम भोगों को भोगकर अब मोक्ष को प्राप्त करेगी, तब फिर दूसरा अन्य कोई विवेकी पुरुष क्या इस प्रकार की विभूति को प्राप्त नहीं होगा? अर्थात् अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति करेगा।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को हरिवंश पुराण ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिए।

दत्त्वा दानं मुनिभ्यो नृ सुरगति भवं भूपाल तनुजा,
सेवित्वा सार सौख्यं तदमल फलतो विष्णोः सुवनिता।
जाता पद्मावती सा जिनपद कमले भृंगी ह्यमलिना,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये ।।14।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- अपराजित राजा की पुत्री विनय श्री मुनियों के लिए दान देकर उसके निर्मल फल से मनुष्य और देव गति के श्रेष्ठ सुख का अनुभव करती हुई पद्मवती नाम की कृष्ण की पट्टरानी हुई। जो जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों में भ्रमरी के समान, अनुराग रखती थी। (तथा आगे देव पर्याय को प्राप्त कर, स्त्री लिंग छेदकर, मनुष्यों में श्रेष्ठ राज पद को प्राप्त करेगी। उत्तमोत्तम भोगों को भोगकर मुनिदीक्षा ले समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष अवस्था को प्राप्त करेगी।) इसलिए निर्मल गुण समूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनि के लिए आहारादि चार प्रकार का दान देना चाहिए।

ग्यारहवीं कथा

अग्निला ब्राह्मणी

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के अन्तर्गत सुराष्ट्र देश के गिरि नगर नामक नगर में भूपाल नाम का राज्य करता था। उसके यहाँ एक सोम शर्मा नाम का पुरोहित था, उसकी स्त्री का नाम अग्निला था। उस दम्पत्ति के शुभंकर व प्रभंकर नाम के दो पुत्र थे, जो क्रमशः सात वर्ष व पाँच वर्ष की अवस्था वाले थे। वे सब सोम शर्मा आदि सुख पूर्वक काल यापन कर रहे थे। एक समय सोम शर्मा के यहाँ श्राद्ध पक्ष (आसोज कृष्ण पक्ष में) में श्राद्ध का दिन आया। (वैदिक परम्परा में यह भी एक मिथ्या धारणा है कि इस प्रकार श्राद्ध करने से पितरों अर्थात् मृत पूर्वजों को शान्ति मिलेगी, किन्तु विवेकी पुरुष इस प्रकार की धारणा से दूर ही रहते हैं।) उस दिन सोम शर्मा ब्राह्मण ने बहुत से ब्राह्मण को भोजन के लिए आमंत्रित किया। वे सब पिण्ड दान करने के लिए जलाशय के ऊपर गये।

इधर मध्याह्न के समय में ऊर्जयंत पर्वत पर साधनारत वरदत्त नाम के मुनिराज उसी समय आहार चर्या हेतु मासोपवास के पश्चात् नगर में पधारे। अग्निला ब्राह्मणी जैनों के सम्पर्क में रहने से आहार दान की विधि और फल आदि के बारे में अच्छी तरह जानती थी। अतः उसने मुनिराज का नवधा भक्ति से युक्त हो अत्यन्त आग्रह के साथ पड़गाहन किया। और उन्हें नवधा भक्ति से युक्त हो विधि पूर्वक निरंतराय मासोपवास का पारणा व धारण कराया। (उपवास के पश्चात् लिया जाने वाला आहार पारणा व उपवास के पूर्व के आहार को धारण करते हैं। उन मुनिराज ने एक माह के उपवास के बाद आहार लिया था अतः पारणा व आगे एक माह का उपवास धारण करने से वह धारण भी कहलाया।)

वरदत्त मुनिराज आहार लेकर घर से निकल ही रहे थे कि उसी समय पिण्ड दान करके लौटते हुए ब्राह्मणों ने उन्हें देख लिया। तब वे ब्राह्मण मुनिराज को

देखते ही कुपित हो कहने लगे कि हे सोम शर्मा! तुम्हारे घर की रसोई को नंगे (मुनिराज) साधु ने झूठा कर दिया है, इसलिए यह हमारे खाने योग्य नहीं है।

इस प्रकार कहकर वे सब जाने लगे। तब सोम शर्मा ने सबसे हाथ जोड़ और पाँवों में गिरकर क्षमा माँगी कहा कि मेरे पास बहुत धन हैं अतः अभी आप भोजन करके मुझे प्रायश्चित देकर शुद्ध कीजिए। तब कुछ ब्राह्मण धन के लोभ में आकर भोजन करने को तैयार हुए तब दूसरे कुछ ब्राह्मण कहने लगे कि इसका प्रायश्चित कुछ नहीं है। इत्यादि विवाद करते हुए अपने-अपने घर चले गये। तब सोम शर्मा ने अपनी स्त्री अग्निला ब्राह्मणी को बाल पकड़ खींचते हुए डण्डों से पीटना प्रारंभ किया। और तब तक पीटता रहा जब तक कि वह मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी। मूर्च्छा दूर होने पर वह ब्राह्मणी ऊर्जयंत पर्वत पर अपने पुत्रों (शुभंकर व प्रभंकर) को साथ लेकर चली गई। वहाँ जाकर उसने मुनिराज से दीक्षा की याचना की। तब मुनिराज ने कहा कि तुम क्रोध के वश होकर आई हो, तथा इन अबोध बालकों की माता हो, इसलिए तुम्हें दीक्षा देना योग्य नहीं है। जब तक आपका कोई सम्बन्धी नहीं आता है तब तक आप वृक्ष के नीचे जाकर ठहर जाओ, क्योंकि लोक निंदा के भय से तुम्हारा यहाँ ठहरना योग्य नहीं है। वह वहां से चलकर, मुनिराज को प्रणाम कर, उनका आभार मानती हुई एक आम्र वृक्ष के नीचे आकर बैठ गई तब उसके बच्चों ने प्यास से आकुल हो पानी माँगा, तब अग्निला ब्राह्मणी के पुण्य से सूखे तालाब में पानी आ गया बालकों ने जब भोजन माँगा तब आसोज में बिना ऋतु के उस वृक्ष पर आम के फल लग गये जिनसे उसने अपने पुत्रों को संतुष्ट किया।

इधर इसी दिन राजभवन व अग्निला के मकान को छोड़कर समस्त गिरि नगर अग्नि के लग जाने से स्वाहा हो गया। तब नगर के बाहर स्थित हो लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि अग्निला (सोम शर्मा) का मकान नहीं जला। लगता है आज उसके घर जिस दिगम्बर नग्न मुनि ने भोजन किया है वह कोई मनुष्य के रूप में देव ही होगा। तब सभी ने सोम शर्मा से उस भोजन को खाने के लिए माँगा। तब सोम शर्मा ने सभी नगर वासियों को भोजन कराया। वे वरदत्त मुनिराज अक्षीण महानस ऋद्धि के धारक थे। अक्षीण महानस ऋद्धि धारी मुनिराज जहाँ आहार करते हैं तो वह भोजन उस दिन के लिए अक्षय हो जाता है। सभी की उस मुनिदान में व जैन धर्म में श्रद्धा हो गयी। तब दूसरे दिन प्रातः काल सोम शर्मा, नगर वासी कुछ लोगों को साथ ले, मन में पश्चाताप करता हुआ अग्निला को खोजने के लिये उसी ओर आया। वह सोम शर्मा अत्यन्त दुखी हो उसे खोजने लगा। जब वह

ऊर्जयंत पर्वत की ओर जा रहा था तब उसकी स्त्री अग्निला ने उसे दूर से ही देख लिया। उसने सोचा कि यह मुझे और दुख देगा अतः उसने वहाँ से गिरकर अपने प्राण त्याग दिये। सोम शर्मा उसके पास पहुँचा भी नहीं था कि इतने में वह व्यंतर लोक में दिव्य शरीर की धारक देवी हो गई। अन्तर्मुहूर्त में अपने दिव्य शरीर व ऋद्धियों से युक्त हो अवधि ज्ञान से अपनी मृत्यु का कारण एवं देव अवस्था की प्राप्ति का कारण जान वहाँ आई। मुनिराज को नमस्कार कर शुभंकर व प्रभंकर के पास अग्निला के रूप में आई, तब तक सोम शर्मा भी वहाँ आ गया। और पश्चाताप पूर्वक क्षमा याचना करते हुए कहने लगा कि मुझ पापी को धिक्कार है, जो पवित्र मूर्ति महासती को मैंने मारा। अब क्षमा करके घर चल। तब वह देवी बोली 'मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ। तुम्हारी पत्नी तो सामने मरी पड़ी है।' फिर भी सोम शर्मा उसे पकड़ने के लिए हुआ तब वह आकाश में अधर हो कहने लगी, कि मुनि को दिये गये आहार दान के प्रभाव से ऐसी अवस्था को प्राप्त हुई हूँ तुम भी इसी धर्म को अंगीकार करो। तब सोम शर्मा ब्राह्मण आदि अनेक पुरुषों ने मुनिराज के समीप जाकर यथा योग्य अणुव्रतों को, और किन्हीं ने महाव्रतों को ग्रहण किया। और सोम शर्मा अपने दोनों बालकों को साथ ले घर आ गया। तब जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई।

कुछ दिनों के उपरान्त वह ब्राह्मण अपनी पत्नी के व्यामोह से तथा वह भगवान् की यक्षिणी हुई, इस लोभ से भी पर्वत के उसी स्थान से जाकर गिरा वह मरकर उस यक्षिणी (अम्बिका देवी) का वाहन देव सिंह हुआ। तत्पश्चात् वे दोनों पुत्र (शुभंकर व प्रभंकर) दृढ़ जैनी हो गये। और उन्होंने दीर्घकाल तक गृहस्थावस्था में रह कर गृहस्थ के षट् आवश्यक कर्तव्यों का दृढ़ता के साथ पालन किया। पुनः किसी निमित्त को पाकर दीक्षा ले वे दोनों दिगम्बर मुनि बन गये। दीर्घकाल तक दुर्द्धर तप कर, ध्यान रूपी अग्नि में चार घातिया कर्मों को नष्ट कर केवल ज्ञान को प्राप्त हुए। तथा आयु के अन्त में अशेष अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

इस प्रकार पराधीन और पति के भय से विकल वह ब्राह्मणी अग्निला एक बार ही भक्ति पूर्वक दिये गये आहार दान के प्रभाव से भगवान् नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका हुई तथा आगे मोक्ष को प्राप्त करेगी। तब फिर क्या अन्य विवेकी भव्य जीव नवधा भक्ति व दाता के सप्त गुणों से युक्त हो आहारादि चार प्रकार का दान चार प्रकार के संघ के लिए देकर उस प्रकार की विभूति को प्राप्त नहीं होगा?

अर्थात् अवश्य ही सांसारिक सुखों को प्राप्त कर मोक्ष सुख को प्राप्त

होगा।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक भव्य जीवों को नेमिनाथ पुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

यासीत्सोमाभरस्य द्विज कुल विदिता नारी पतिरता,
दत्वान्नं भर्तृभीतापि सुगुणमुनये भक्त्या जिनपतेः।
नेमेर्यक्षी बभूव प्रबल गुण गुण रोगादि रहिता,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये ।।16।।

पु.क.को.

अर्थः- ब्राह्मण कुल में प्रसिद्ध व पति सेवा में अनुरक्त जिस सोमदेव की स्त्री ने पति से भयभीत होकर भी जिनेन्द्र भक्ति के वश, उत्तम गुणों के धारक मुनिराज के लिए आहार दिया था, वह उस दान के प्रभाव से भगवान् नेमिनाथ जिनेन्द्र की यक्षी हुई वह उत्तम गुणों से युक्त होकर रोगादि से रहित थी (तथा जो आगे मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर मुनि दीक्षा धारण करके, दुर्द्धर तप के द्वारा समस्त कर्मों को नष्ट करके मोक्ष अवस्था को प्राप्त करेगी।) इसलिये निर्मल गुण समूह के धारक भव्य जीवों को उत्तम मुनिराजों अथवा सत्पात्रों के लिए आहारादि चार प्रकार का दान देना चाहिए।

बारहवीं कथा

रानी विनयश्री

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्डस्थ सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत द्वारावती नगरी में नवमें नारायण श्री कृष्ण एवं नवमें बलभद्र श्री बलराम जी राज्य करते थे। श्री कृष्ण ने अपने चक्ररत्न आदि के प्रभाव से जरासंध को जीतकर तीन खण्ड पृथ्वी को अपने वश में किया था। उनकी आठ पटरानियाँ थीं, जिनके नाम क्रमशः सत्यभामा, रुक्मिणी, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गान्धारी थे।

जिस समय श्री कृष्ण द्वारिका नगरी (द्वारावती) के राजा थे उस समय हरिवंश के तिलक भूत, श्री कृष्ण जी के ताऊ जी के लड़के, बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जी (अरिष्ट नेमि) भगवान् केवल ज्ञान को प्राप्त कर लोकालोक के ज्ञाता सर्वज्ञ, वीतरागी, सर्वदर्शी, अरिहंत अवस्था में विराजमान थे। नारायण श्री कृष्ण जी भगवान् नेमिनाथ के परमोपासक थे। (इसलिए नहीं कि वे हमारे भाई हैं अपितु इसलिए कि भगवान् नेमिनाथ चार घातियाँ कर्मों को नष्ट करके तीनों लोक (अधोलोक, मध्यलोक, उर्ध्वलोक) के स्वामी हैं। वे नो संसारी/जीवन मुक्त सकल परमात्मा हैं।

श्री कृष्ण नारायण अपने भाई बलराम (बलदाऊ) एवं सपरिवार के साथ ऊर्जयंत पर्वत पर धर्मोपदेश सुनने हेतु समवशरण में (सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर द्वारा निर्मित तीर्थंकरों की धर्मसभा में जिसे समवशरण कहते हैं। क्योंकि यहाँ ससार के समस्त प्राणियों को समान रूप से शरण प्राप्त होती है। अथवा यहाँ संसार के समस्त अशरण प्राणियों को समान रूप से शरण प्राप्त होती है। अथवा यहाँ संसार के समस्त अशरण प्राणियों को समीचीन शरण प्राप्त होती है अतः यह

समवशरण कहा जाता है।) जाते थे। नारायण श्री कृष्ण व बलराम आदि भगवान् नेमिनाथ स्वामी की आध्यात्मिकता, आत्म प्रबोध, त्याग तपस्या त्रैलोक व्यापी ज्ञान एवं अट्ठारह दोषों से रहित वीतरागता से बहुत ही प्रभावित थे अतः अनेक बार उनके चरण सानिध्य में बैठकर धर्मोपदेश को सुना।

एक बार नारायण श्री कृष्ण जी जब परिवार के साथ धर्मोपदेश सुनने गये थे। तब नेमिनाथ भगवान के शिष्य गणधर वरदत्त स्वामी (जो मति, श्रुत, अवधि व मनः पर्यय ज्ञान इन चार ज्ञानों के व अनेक ऋद्धि सिद्धियों के धारक थे) से उनकी पट्टरानी गांधारी ने अपने पूर्व भव पूछे, तब भगवान वरदत्त स्वामी ने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड में अयोध्या नाम की उत्तम नगरी है, जो अनन्त तीर्थंकरों व महापुरुषों के गर्भ, जन्म कल्याणक आदि से पवित्र है। उसी अयोध्या नगरी में रुद्रदास नाम का धर्म प्रिय, न्याय नीति पूर्वक प्रजा का परिपालन करने वाला उत्तम राजा था। उसकी श्रद्धा सच्चे देव, शास्त्र, गुरू व जिनधर्म के प्रति तलवार पर चढ़ाये हुये पानी की तरह अटल थी। उसकी रानी (पत्नी) का नाम विनयश्री था। जो यथा नाम तथा विनयादि गुण की धारक थी। एक दिन पूर्व पुण्योदय के संयोग से महातपस्वी, परम शांत मूर्ति, मासोपवासी, श्रीधर मुनिराज के दर्शन हुए। जिनका दर्शन मात्र भी असंख्यात भव के संचित पाप कर्मों के क्षय/निर्जीर्ण करने में निमित्त था। बिना पुण्योदय के प्राणी को कभी स्वप्न में भी वीतरागता के दर्शन नहीं होते। वे मुनिराज आहार चर्या हेतु नगर में पधारे थे। तुरंत ही राजा श्रीधर व रानी विनयश्री ने उन मुनिराज को उत्तम विधि व नवधा भक्ति पूर्वक आहार दान दिया। जिसके प्रभाव से विनयश्री रानी तो उत्तम भोग भूमि उत्तर कुरु में तीन पल्य की आयु को धारण करने वाली आर्या हुई। वहाँ अपनी आयु को पूर्ण करके ज्योतिर्लोक में चन्द्र विमान में चन्द्रमा की देवी हुई। वह अपनी देवी अवस्था की समस्त आयु को विषय सुख व धर्म ध्यानादि के साथ व्यतीत करके वहाँ से च्युत हुई। तब इसी भरत क्षेत्र की विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गगन वल्लभपुर के राज विद्युद्वेग और रानी विद्युन्मती के विनय श्री नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। उसका विवाह नित्यालोक पुर के राजा महेन्द्र विक्रम के साथ हुआ। महेन्द्र विक्रम एक बार किन्हीं चारण ऋद्धि धारी मुनि के दर्शन व धर्मोपदेश सुन वैराग्य को प्राप्त हो, जिनेश्वरी (दिगम्बर मुनि) दीक्षा को प्राप्त हुआ। तब वह विनय श्री किसी कारण बस दीक्षा न लेकर अपने पुत्र हरि वाहन के पास राज महलों में ही राजमाता बनकर रही। तब विनय श्री ने सर्वतोभद्र नामक व्रतों का पालन किया, जिसके

प्रभाव से वह सौधर्म स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र की देवी हुई। वहाँ से च्युत होकर तुम गांधारी हुई हो। इस पर्याय में आर्यिका दीक्षा लेकर तप के प्रभाव से स्त्री पर्याय को छेदकर कल्पवासी देव होगी तथा वहाँ अपनी आयु पूर्ण करके च्युत हो, इसी भरत क्षेत्र में महामण्डलेश्वर राजा हो, धर्म साधना करते हुए दीर्घकाल तक विषय सुख को भोगकर पुनः जिन दीक्षा ग्रहण करोगी। मुनि व्रत ग्रहण कर कठिनतम तपस्या करके व ध्यानाग्नि से सर्व कर्मों को जलाकर मोक्ष को प्राप्त करोगी। इस प्रकार अपने पूर्व भवों को एवं तृतीय भव में मोक्ष प्राप्ति की वार्ता सुनकर वह गांधारी परम आनन्द को प्राप्त हुई।

इस प्रकार वह विवेक रहित बाला स्त्री एक बार ही नवधा भक्ति से युक्त हो, मुनि के लिए दिये गये आहार दान के प्रभाव से इस प्रकार की भोग भूमि, स्वर्ग व मनुष्यों की राज्य विभूति को प्राप्त हो मोक्ष को प्राप्त करेगी। तब फिर अन्य कोई विवेकी पुरुष नवधा भक्ति पूर्वक दाता के सप्त मूल गुण व इक्कीस उत्तर गुणों व पांच भूषणों से युक्त तथा पाँच दूषणों व अतिचारों से रहित हो उत्तम मुनिराजों के लिए आहारादि चार प्रकार का दान देगा तो क्या वह इस प्रकार की विभूति को प्राप्त नहीं होगा। अर्थात् अवश्य ही वैसी (मोक्ष रूपी) विभूति को प्राप्त करेगा।

नोटः- इसकी (विनयश्री की) कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को हरिवंश पुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

गान्धारी विष्णु जाया सुर नर भवजं भुक्त्वा वर सुखं,
दत्तान्ना शुद्ध भावाच्चिर विगतभवे याभून्नृप वधूः।
लोके दानाद्विभाषे किमहमनुपमं सौख्यं तनुभृतां,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये ।।12।6।।

पु.क.को.

अर्थः- जिसने कुछ भवों के पूर्व में रुद्रदास राजा की पत्नी होकर शुद्ध भाव से मुनि के लिए आहार दिया था वह देव और मनुष्य भव के उत्तम सुखों को भोगकर कृष्ण की पत्नी गांधारी हुई। लोक में प्राणियों को दान के प्रभाव से जो अनुपम सुख प्राप्त होता है उसके विषय में क्या कहूँ? अर्थात् आहार दान का महत्व वचनों के अगोचर है, उसकें पूर्ण फल को कहने में तो केवली भगवान (सर्वज्ञ देव) ही समर्थ हैं। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को सदैव उत्तम मुनियों को (आहारादि चार प्रकार का) दान देना चाहिए।

तेरहवीं कथा

भामण्डल

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथनूपुर नगर में सीता देवी (श्री रामचन्द्र की पत्नी अथवा श्री जनक राजा की पुत्री) का भाई व विद्याधरों का राजा भामण्डल (प्रभामण्डल) न्याय पूर्वक, प्रजा के साथ पुत्रवत् स्नेह करते हुए समीचीनता से राज्य का संचालन करता था। इसके राज्य में विद्वान्, धर्मात्मा एवं समीचीन क्रियाओं से युक्त साधर्मी जनों का सम्मान एवं दुष्ट, क्रूर, पापी, हिंसक, अन्याय के पोषक, अनैतिक व्यवहार करने वालों का निग्रह किया जाता था। इसके राज्य में प्रजा सब तरह से संतुष्ट थी।

उसी समय अयोध्या में अष्टम बलभद्र श्री पद्म (रामचन्द्र जी) व अष्टम नारायण श्री लक्ष्मण जी राज्य करते थे। लोकापवाद के कारण जब श्री पद्म जी ने सीता जी को तीर्थ यात्रा के बहाने व कृतांत वक्र सेनापति द्वारा जंगल में छुड़वा दिया गया। इस बात को श्री पद्म व लक्ष्मण व समस्त अयोध्या जनवासी भी जानते थे कि सीता अपने शील में दृढ़ तथा पूर्णरूपेण निर्दोष है। फिर भी लोक व्यवहार के कारण उन्होंने निर्दोष महासती सीता को जंगल में छुड़वा दिया। इसी नगरी में (अयोध्या में) सेठ कदम्बक और पत्नी अम्बिका निवास करते थे, दोनों धर्म भावना से परिपूर्ण थे। श्रावक के षट् आवश्यक कर्तव्यों का नित्य पालन करते थे। इस दम्पत्ति के अशोक व तिलक नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये दोनों पुत्र माता-पिता के अनुसार ही धर्म के संस्कारों से परिपूर्ण थे। जब सेठ, सेठानी व इनके पुत्रों ने निर्दोष सीता के परित्याग की बात सुनी, तो वे सभी संसार, शरीर, भोगों से परम वैराग्य को प्राप्त हुए। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ व धर्म भावना इन द्वादश भावनाओं का यथार्थ चिन्तवन करते हुए परम तपस्वी द्युतिभट्टारक के समीप में कदम्बक, अशोक व तिलक ने (पिता व दोनों पुत्रों

ने) जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। जिनदीक्षा ले द्वादशांग रूप श्रुत का अभ्यास, अनशनादि द्वादश तप एवं आज्ञा विचयादि दस प्रकार के धर्म ध्यान में संलग्न हुए। एक बार ये तीनों (कदम्बक, अशोक व तिलक नामक) मुनिराज ताम्र चूड़ पुर में स्थित जिन चैत्यालय की वन्दना करने जा रहे थे। मार्ग में पचास योजन विस्तीर्ण सीतार्णव नामक वन के मध्य में पहुँचने पर वर्षा काल (चातुर्मास) का समय निकट आ गया।

इसलिए उन तीनों मुनियों ने उसी वन के मध्य में वर्षा योग ग्रहण कर लिया। उस रथनूपुर का राजा प्रभामण्डल (भामण्डल) इच्छानुसार वन भ्रमण करता हुआ वहाँ से निकला। वह मुनियों के इस उपसर्ग को देखकर वहीं पर निर्मापित ग्रामादिकों में स्थित होता हुआ उन्हें आहार देने लगा। इससे उसने बहुत पुण्य का संचय किया। चातुर्मास काल समाप्त होने पर वे तीनों मुनिराज वहाँ से ताम्रचूड़ नगरी की ओर विहार कर गये। प्रभामण्डल (भामण्डल) भी वहाँ से अपने नगर में पहुँच गया। वहाँ उसने दीर्घकाल तक राज्य का विधि पूर्वक संचालन किया। दीर्घकाल तक इन्द्रिय विषय सुखों का भोगोपभोग किया।

एक दिन रात्रि के समय वह अपनी रानी सुन्दरमाला देवी के साथ शैय्या पर सोया हुआ था तभी पूर्व पापोदय के कारण अकस्मात् आकाश से बिजली गिरी और उससे उसकी व सुन्दरमाला की मृत्यु हो गई। पूर्व में मुनिराजों को दिये गये आहार दान के प्रभाव से व मन्द कषाय से उसने उत्तम भोग भूमि के योग्य तीन पल्य की मनुष्य आयु का बन्ध किया था। जिससे मरणोपरान्त वह उत्तम भूमि में आर्य हुआ। वहाँ से तीन पल्य की आयु पूर्ण करके देवगति के उत्तमोत्तम भोगों को भोग कर कालान्तर में मनुष्य पर्याय धारण कर, मुनिव्रत अंगीकार करके, बारह प्रकार के दुर्द्धर तपों द्वारा समस्त कर्मों का क्षय कर अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार विषयानुरागी, सम्यक्त्व विहीन वह प्रभामण्डल (भामण्डल) मुनिराजों के लिए दिये गये आहार दान के प्रभाव से उत्तम भोग भूमि व स्वर्ग तथा मनुष्य लोक के सुखों को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करेगा। तब फिर क्या जो विवेकी भव्य जीव श्रद्धांजलि सप्त गुण व नवधा भक्ति से युक्त हो सत्पात्रों को दान देगा, वह क्या ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं होगा? अर्थात् अवश्य ही ऐसी विभूति प्राप्त करेगा।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को

पद्मपुराण ग्रंथ का स्वाध्याय करना चाहिए।

नाना कल्पांघ्रिपैर्यें समल सुखदैश्छन्ना सुकुरवो,
जातस्तेषु प्रभूतः सुगुण गण युतो दातान् सुविमलात्
मृत्वा विद्युत्प्रपाताच्छयनतलगतो भामण्डल नृप,
स्तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये ।।10।6।।

पु.क.को.

अर्थः- अनेक उत्तम गुणों से संयुक्त भामण्डल राजा शययातल पर स्थित होते हुए (सुप्त अवस्था में) बिजली के गिरने से मृत्यु को प्राप्त होकर निर्मल दान के प्रभाव से उन कुरूओं (उत्तम भोग भूमि) में उत्पन्न हुआ जो कि अत्यन्त निर्मल सुख देने वाले कल्प वृक्षों से संयुक्त हैं। इसलिए निर्मल गुणों के समूह युक्त भव्य जीवों को निरन्तर उत्तम मुनियों के लिए (आहारादि चार प्रकार का) दान देना चाहिए।

चौदहवीं कथा

अकृत पुण्य

इसी जम्बू द्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड में मगध देश के अन्तर्गत भोगवती नाम की नगरी थी। उस नगर में काम वृष्टि नामक जमींदार (गाँव का मुखिया) रहता था। उसकी स्त्री का नाम मृष्टदाना था। ये दोनों जिन पूजा व गुरू उपासनादि षट् आवश्यक कर्तव्यों का यथा शक्य पालन करते हुए धर्म ध्यान पूर्वक अपना जीवन यापन कर रहे थे। नगर के सभी लोग कामवृष्टि का बड़ा ही आदर-सम्मान करते थे। सभी के लिए कामवृष्टि प्रिय ही नहीं आदर्श रूप था। इस कामवृष्टि के सुकृत पुण्य नाम का स्वामी भक्त, ईमानदार एवं परिश्रमी सेवक था। जो कि कामवृष्टि की सेवा करने में अपना अहोभाग्य मानता था। 'सत्य ही है धर्मात्मा, सत्पुरुषों की सेवा भी सातिशय पुण्य कर्म के उदय से मिलती है।' आज कामवृष्टि का पुण्य उदय चल रहा है, वह उस पुण्योदय से प्राप्त फल में हर्ष भाव को धारण करता हुआ, भोगोपभोग में संलग्न है तथा भविष्य के प्रति बेखबर है।

समय सदा किसी का एक सा नहीं रहता। पुण्य पाप दिन रात या धूप छाया की तरह क्षण ध्वंसी है। कभी रात बड़ी तो दिन छोटे हैं तो कभी दिन बड़े और रात छोटी होती हैं। तो कभी दोनों समान भी होते हैं इसी तरह कभी पुण्य का तीव्र उदय, कभी पाप का तीव्र उदय तो कभी दोनों का समान उदय इस प्राणी के जीवन में रहता है।

कुछ दिनों के बाद मृष्ट दाना गर्भवती हुई, तो घर में सम्पत्ति का कपूर की तरह उड़ना प्रारम्भ हो गया। संसार में निमित्त के बिना कोई कार्य नहीं होता। मृष्टदाना के गर्भ में पापिष्ठ जीव के आ जाने से मृष्टदाना के परिणाम भी धर्म ध्यान से शून्य हो गये। और गर्भस्थ शिशु के पाप से इष्ट पदार्थों का वियोग होना

प्रारंभ हो गया।

ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता गया त्यों-त्यों कामवृष्टि जमींदार की सम्पत्ति नष्ट होती गयी। और पुत्र के जन्म के पूर्व ही कामवृष्टि एवं उसके समस्त परिवार का निधन हो गया। मात्र परिवार में मृष्टदाना ही शेष रह गयी। पुण्य और पाप कर्म उदयागत होने पर ही अपना फल नहीं देते अपितु सत्ता में रहते हुए भी अपना प्रभाव दिखाते हैं। जैसे सूर्य उदय होने के पहले ही पृथ्वी के अंधकार को नष्ट कर देता है। अथवा तीर्थंकर प्रकृति का उदय न होने पर भी (सत्ता में रहते हुए भी) वे तीन लोक के प्राणियों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में होता है, फिर भी उसकी प्रभा प्रथम या चतुर्थ गुणस्थान से ही प्रारंभ हो जाती है। इसी प्रकार पाप कर्म भी सत्ता में रखा हुआ भी अपना प्रभाव दिखाता है, उदय में आने पर तो फल देता ही है। जैसे कि अनन्तानुबन्धी कषाय आदि सत्ता में भी है, तो भी मुनिजन उपशम वा क्षपक श्रेणी पर आरोहण नहीं कर सकते।

नवमास के अनन्तर मृष्टदाना ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम (पुण्य क्षीण करने वाला होने से या पापिष्ठ होने से) 'अकृत पुण्य' रखा गया। जिसने पूर्व भव में पुण्य नहीं किया है ऐसा अकृत पुण्य शरीर की वृद्धि को प्राप्त हुआ किन्तु पुण्य ह्रास को प्राप्त हो गया था। मृष्टदाना दूसरों के घर चक्की पीस कर अथवा अन्य गृह सम्बन्धी काम काज करके अपना तथा अकृत पुण्य का भरण पोषण कर रही थी। एक दिन अकृत-पुण्य (अपने पिता के सेवक) सुकृत पुण्य के यहाँ चने के खेत पर नौकरी (काम) करने गया। वहाँ सुकृत पुण्य ने काम करने के बदले में ही नहीं अपितु करुणा बुद्धि से यह सोच कर कि 'यह मेरे स्वामी का लड़का है' कभी मैं इसके पिता के यहाँ सेवा करता था किन्तु आज यह मेरे यहाँ काम करने आया है, कर्मों की बड़ी विचित्र ही गति होती है, बहुत रत्न अकृत पुण्य को दिये किन्तु वे रत्न पाप के उदय से अंगारे बन गये, स्वर्ण की रस्सी (चेन/आभूषण) आदि उपहार दिये वे भी पाप के उदय से मिट्टी बन गये। जब उसने बहुत सारे चने दिये थे तो वे भी अकृत पुण्य फटे वस्त्र में से रास्ते में गिर गये। मुट्ठी भर चना लेकर जब वह माँ के पास पहुँचा और उसने अपना पूरा वृत्तांत माँ को सुनाया तो माँ की आँखों में आँसू भर आये और वह अपनी प्रतिष्ठा/इज्जत की रक्षा हेतु उस नगर को छोड़कर अवन्ति देश के सीसवाक ग्राम में पहुँची। क्योंकि अपनी जन्म भूमि में निर्धन व्यक्ति का कोई सम्मान नहीं करता। सीसवाक ग्राम में बलभद्र नामक गाँव के मुखिया (जमींदार) के रहने लगी, उसने भी इसे बहिन मानकर रख लिया। मृष्टदाना को घर पर भोजन बनाने

का तथा अकृतपुण्य को गाय बछड़े चराने के लिए रख लिया।

एक दिन अकृत पुण्य ने (बलभद्र के सातों पुत्रो को खीर खाते हुए देखकर) अपनी माँ से खीर खाने को माँगी। तब माँ अपनी अवस्था का स्मरण कर बहुत खेद खिन्न हुई। पुनः पुत्र के अत्याग्रह होने पर उसने दूध, चावल, बूरा आदि बलभद्र से माँगकर अकृत पुण्य के लिए खीर बनाई। खीर बना कर, वह अकृत पुण्य को घर की देखभाल रखने के लिए कहकर पानी भरने चली गई, तथा जाते-जाते कहती गई कि 'यहाँ कोई साधु पुरुष आये तो रोक लेना उसे खीर खिलाकर ही तुझे खीर खिलाऊँगी।

उसके जाने के बाद वहाँ एक मासोपवासी सुव्रत नाम के मुनिराज आहार चर्या हेतु पधारे। तब अकृतपुण्य ने उन्हें रोकते हुए कहा आप रुकिये। मेरी माँ ने खीर बनाई है, अतः आप खाकर ही जायें।

इस पर भी जब महाराज नहीं रुके तो अकृत पुण्य ने उनका मार्ग रोककर कहा कि तुम्हारा क्या बिगड़ता है? खीर खाकर ही जाओ। नहीं तो माँ मुझे खीर नहीं देगी। यह मुनि मार्ग नहीं है ऐसा सोचकर सुव्रत नामक मुनिराज आगे बढ़े तो अकृत पुण्य ने भक्ति के आवेश में रोते हुए उनके दोनों पैर पकड़ लिये। तब तक मृष्टदाना भी पानी से भरे कलश लाते हुए वहाँ आ पहुँची और उसने मुनिराज का विधिवत् पड़गाहन किया तथा नवधा भक्ति से युक्त हो आहार दिया। अत्यन्त प्रसन्नता के साथ, गद्‌गद् हो अकृत पुण्य ने उस आहार दान की अनुमोदना की। वे मुनिराज अक्षीण महानस ऋद्धि के धारक थे अतः वह खीर उस दिन अक्षीण हो गई। तब मृष्टदाना ने बलभद्र, उसके सातों पुत्र व समस्त नगरवासियों को खीर खिलाकर स्वयं खीर का भोजन किया।

दूसरे दिन बची हुई खीर खाकर वह अकृत पुण्य गाय, बछड़ों को चराने जंगल में ले गया। वहाँ उसे नींद आ गई, इतने में सब गाय बछड़े घर आ गये। जब वह जागा तो वहाँ गाय, बछड़ों को न देखकर घबरा गया और उन्हें खोजता हुआ घर की ओर आने लगा। घर अकृत पुण्य के न पहुँचने से उसका मामा बलभद्र उसे खोजता हुआ जंगल की ओर आ रहा था। वह मामा को देखकर भयभीत हो जंगल में भाग गया। वहाँ उसने गुफा में विराजमान उन्हीं मुनिराज का दिव्य धर्मोपदेश सुना। रात्रि में व्याघ्र के द्वारा वह मारा गया। णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त होने से वह सौधर्म स्वर्ग में कल्पवासी देव हुआ। प्रातःकाल उसकी माँ मृष्टदाना व उसके मामा बलभद्र उसे खोजने के लिए वहाँ आये तब वह सौधर्म स्वर्ग का देव (अकृत पुण्य का जीव) उन्हें सम्बोधन देने वहाँ आया। 'मैं आहार दान की

अनुमोदना के प्रभाव से यहाँ देव हुआ हूँ, अतः आप भी सदैव सत्पात्रों को दान देने में संलग्न रहना' कहकर स्वर्ग वापिस चला गया, वहाँ देव वन्दना आदि सत्कार्यों में प्रवृत्त हो अपनी आयु पूर्ण करके जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी में (जब अवनिपाल राजा राज्य कर रहा था तब) धनपाल सेठ व प्रभावती सेठानी के यहाँ धन्य कुमार नामक पुत्र हुआ। बलभद्र मामा इस भव में धनपाल व मृष्टदाना-प्रभावती सेठानी हुई तथा उसके सातों भाई भी यहाँ देवदत्तादि सातों भाई हुए।

सातिशय पुण्य के उदय से धन्य कुमार ने जन्म से ही सर्वत्र लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा, देवोपुनीत सम्मान एवं देवों द्वारा पूजा को प्राप्त किया। जन्म के समय नाल गाढ़ने के लिए गड्ढा खोदा गया तो उसमें स्वर्ण व रत्नादि से भरा हुआ एक पात्र मिला, व्यापार के समय भी लकड़ी के पायों में वसुपाल राजा कृत व्यवस्था पत्र व रत्नों की प्राप्ति हुई, कुटुम्बी किसान के यहाँ भी खेत में रत्नों व सुवर्ण मुहरों से भरा कलश मिला, कई श्रेष्ठी कन्याओं से विवाह हुआ विपुल धन वैभव व राज्य सम्मान को प्राप्त किया। राज्यावस्था में दीर्घकाल तक भोगोपभोग का व इन्द्रिय विषयों का धर्म ध्यान पूर्वक सेवन किया।

चिरकाल तक श्रावकों के कर्तव्यों का पालन कर एवं जिनधर्म की अनुपम प्रभावना करता हुआ एक दिन संसार शरीर व भोगों से विरक्त हो गया। यथाजात दिगम्बर जिन दीक्षा को धारण कर दुर्द्धर तप करके सर्वार्थ सिद्धि नामक सर्वोच्च विमान में तेतीस सागर की आयु का धारक अहमिन्द्र हुआ है। वहाँ धर्म चर्चा में रहता है, तेतीस पक्ष (साढ़े सोलह महीने) में एक बार श्वांस लेता है तथा तेतीस हजार वर्ष में एक बार अमृतोपमा (इच्छा होने पर कण्ठ से निर्झरित अमृत) आहार करता है।

तेतीस सागर का काल पूर्ण करके वहाँ से च्युत होकर वहाँ श्रेष्ठ राज्य विभूति को प्राप्त करता हुआ, उत्तमोत्तम भोगों का भोक्ता होगा तथा किसी निमित्त को पाकर संसार, शरीर भोगों से विरक्त हो, जिनदीक्षा ग्रहण करके उत्तम साधना करके समस्त कर्मों का क्षय करता हुआ मुक्ति को प्राप्त होगा।

वह अकृत पुण्य कई पूर्व भव पहले भूतिलक नगर में जैन धर्म पालक धनपति वैश्य द्वारा देव पूजा के लिए दिये द्रव्य को खाकर सातवें नरक में गया वहाँ से निकल कर महामत्स्य हुआ पुनः मरणकर सातवें नरक में गया वहाँ से पुनः दीर्घकाल तक अनेक त्रस व स्थावर पर्यायों में भ्रमण कर अकृत पुण्य हुआ था। वहाँ आहार दान की अनुमोदना करने मात्र से प्रथम स्वर्ग (सौधर्म कल्प) में देव हुआ वहाँ

से च्युत होकर महान अभ्युदय का धारक, श्रेष्ठियों का शिरोमणि, महामहिमाशाली पुण्यवान् धन्य कुमार हुआ। वहाँ से भी समाधि सहित मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ से चय कर राज्यावस्था को प्राप्त कर पुनः जिन दीक्षा ले मोक्ष प्राप्त करेगा। इस प्रकार वह विवेक हीन अकृत पुण्य आहार दान की अनुमोदना मात्र से ऐसी विभूति को प्राप्त हुआ है। तब अन्य कोई विवेकी भव्य जीव नवधा भक्ति व दाता के सप्त गुणों से युक्त हो सत्पात्रों को वा उत्तम मुनियों को आहारादि चार प्रकार का दान देंगे क्या वे इस प्रकार की विभूति को प्राप्त नहीं होंगे। अर्थात् वे अवश्य ही उत्तमोत्तम वैभव व परम्परा से मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को धन्य कुमार चरित्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

यद्धस्तेशातकुम्भं पतितमपि मली संभूतममलं,
संजातः सोऽपि दानाद् दिवि मणि भवने देवीसुरमणः।
तस्मादासीत् स धन्यः सुगुण निधि पति वैश्यो विमलधी,
स्तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणै र्भव्यैः सुमुनये ।।15।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- जिसके हाथ में से गिरा हुआ निर्मल सोना भी मलिन हो गया, (वह स्वर्ण मिट्टी व रत्न अंगारे हो गये) वह (अकृत पुण्य) भी मुनि दान के प्रभाव से स्वर्ग के भीतर मणिमय भवन में उत्पन्न होकर देवियों के मध्य में रमने वाला देव हुआ और फिर वहाँ से च्युत होकर उत्तम गुणों से संयुक्त निर्मल बुद्धि का धारक धन्य कुमार वैश्य हुआ, इसलिए निर्मल गुणों के समूह से संयुक्त भव्य जीवों को उत्तम मुनिराजों के लिए नित्य ही आहारादि चार प्रकार का दान देना चाहिए।

पन्द्रहवीं कथा

रतिवर-रतिवेगा

जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के पुष्कलावती देश के अन्तर्गत मृणालपुर में न्याय प्रिय, प्रजावत्सल, धर्मनीति सम्पन्न, समस्त कलाओं व विद्याओं में निपुण, सुकेतु नाम का राजा राज्य करता था। इसी नगर में श्री दत्त नामक वैश्य रहता था। जिसकी विमला नाम की पत्नी से रतिकान्ता नाम की धर्मवत्सला, अनुपम सौंदर्य की धारिणी, धर्मरूपी कर्तव्यों के पालन करने में दक्ष सुपुत्री थी।

इसी नगर में रति वर्मा वैश्य (विमला का भाई) व उसकी पत्नी कनक श्री का पुत्र भवदेव भी रहता था। इसकी गर्दन लम्बी होने से नागरिक लोग इसे उष्ट्र ग्रीव कहने लगे थे। इसने श्री दत्त से उसकी पुत्री रतिकान्ता की याचना की, तब श्री दत्त ने 'तू पुरुषार्थ हीन व व्यवसाय हीन है' यह कहकर मनाकर दिया। तब वह श्री दत्त बारह वर्ष की अवधि की मर्यादा करके व्यवसाय हेतु द्वीपान्तर में चला गया। यदि मैं बारह वर्ष में द्वीपान्तर से धन कमाकर वापिस न आऊँ तो किसी और को कन्या दे सकते हो। और बारह वर्ष तक लौट कर आ गया तो रतिकान्ता के साथ मैं ही विवाह करूँगा।

जब वह (भवदेव) द्वीपान्तर से बारह वर्ष में वापिस नहीं आया, ६ माह

अतिरिक्त निकल जाने पर श्रीदत्त ने अपनी पुत्री रतिकान्ता का विवाह इसी नगर में स्थित अशोक व जिनदत्ता के पुत्र सुकान्त से कर दिया। भवदेव द्वीपान्तर से जब वापिस आया तो वह रतिकान्ता के साथ विवाह कर लेने से सुकान्त पर बहुत कुपित हुआ और उसने सुकान्त व रतिकान्ता का प्राणान्त करने के लिए रात्रि में अपने सेवकों को साथ ले जाकर उसके घर को चारों ओर से घेर लिया। किन्तु रात्रि के अँधकार में पूर्व पुण्य के शेष रहने से वे किसी तरह प्राण बचाकर वहाँ से निकल भागे। और शोभानगर के राजा प्रजापाल के अधीनस्थ राजा शक्ति सेन की शरण में पहुँच गये। उस समय तो भवदेव उन्हें नहीं मार सका किन्तु शक्तिसेन की मृत्यु के बाद भवदेव ने रतिकान्ता व सुकान्त को जलती हुई अग्नि में डालकर जला दिया। तब ग्रामीण लोगों ने भवदेव को भी उसी अग्नि में डाल दिया जिससे वह आर्तध्यान से संक्लेशता पूर्वक मरकर जम्बू ग्राम में बिलाव हुआ। रतिकान्ता व सुकान्त भी मरणोपरान्त पुण्डरीकिणी नगरी में सेठ कुबेर कान्त व प्रियदत्त के यहाँ रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी हुई।

एक दिन कुबेरकान्त श्रेष्ठी के यहाँ अमित गति नाम के चारण ऋद्धिधारी मुनिराज आहार चर्या हेतु पधारे। राज श्रेष्ठी कुबेरकान्त व प्रियदत्त सेठानी ने उन्हें नवधाभक्ति से युक्त हो आहार दान दिया, जिसकी रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी ने भी अनुमोदना की, और परम आनन्दित हुए, उन्हें आनन्दित देखकर कुबेदत्त ने कहा हे रतिवर, रतिवेगे, इस आहार दान से जो पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है उसका हजारवाँ भाग मैं आप दोनों को देता हूँ। तब रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी ने भी उसे स्वीकार कर लिया।

एक दिन वे दोनों (कबूतर-कबूतरी) विमलजला नदी के किनारे दाना चुगते हुए बालुका पर क्रीड़ा कर रहे थे, तभी उन्होंने आकाश मार्ग से विमान द्वारा जाते हुए विद्याधर युगल को देखकर (आहार दान के हजारवें भाग पुण्य के बदले में) यह निदान कर लिया कि हम दोनों भी अगले भव में इसी प्रकार विद्याधर व विद्याधारी हों। यह निदान संसार का कारण होता है। मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को अर्थ पुरुषों द्वारा निन्दित यह निदान नहीं करना चाहिए।

तदनन्तर एक समय वे (कबूतर-कबूतरी) दोनों जम्बूग्राम में जिन चैत्यालय के समीप दाना चुग रहे थे, तभी पूर्व भव के बैरी (भवदेव के जीव) विलाव ने उन्हें देखा, देखते ही उसे जातिस्मरण हो गया पूर्वभव का बैर विचार कर उन्हें मारने के लिए झपटा। और उसने पहले रतिवर कबूतर को घायल किया तब रतिवेगा कबूतरी उसके मस्तक पर चोंच मारने लगी, तब उसने रतिवर कबूतर को छोड़कर

रतिवेगा को पकड़ लिया, तब तक उपस्थित ग्रामीण लोगों ने उन्हें छुड़ाया। वे दोनों उस समय मरणासन्न अवस्था में थे। तब वहीं पर जिन चैत्यालय (मन्दिर) में विराजमान करुणा निधि, सौम्य, मूर्ति व धर्म वत्सला श्री आर्यिका माता जी ने उन दोनों को पंच नमस्कार मंत्र सुनाया। जिससे उनके परिणाम कुछ निर्मल हुए और मृत्यु को प्राप्त कर पूर्व में बांधे हुए निदान के कारण विद्याधर व विद्याधरी हुए।

रतिवर कबूतर का जीव जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्रस्थ पुष्कलावती देश सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में सुसीमा नगर के विद्याधर राजा आदित्य गति व रानी शशिप्रभा के हिरण्य वर्मा नाम का पुत्र हुआ तथा रतिवेगा कबूतरी इसी देश की विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में भोगपुर नगर के राजा वायुरथ व रानी स्वयंप्रभा के प्रभावती नामकी गुणों की खान, अनुपम रूप राशि से युक्त कन्या हुई।

गति युद्ध में प्रभावती को हिरण्य वर्मा ने जीत लिया, इसलिए स्वयंवर में एवं पूर्वभव के संयोग वशात् हिरण्य वर्मा का प्रभावती आदि एक हजार कन्याओं के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। हिरण्य वर्मा के पिता आदित्य गति किसी निमित्त को पाकर वैराग्य भाव को प्राप्त हुए। तब उन्होंने हिरण्य वर्मा को राज्य सौंप कर, संसार, शरीर भोगों से विरक्त हो, सकल परिग्रह का परित्याग करके यथाजात दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर, दुर्द्धर साधना कर मुक्ति को प्राप्त किया। तब हिरण्य वर्मा दोनों श्रेणियों को स्वाधीन करके समस्त विद्याधरों का स्वामी हो गया। एवं महती विभूति के साथ दीर्घकाल तक विषयों का सेवन किया।

किसी समय वह हिरण्य वर्मा और प्रभावती दोनों जिनगृह की वंदना करने के लिए पुण्डरीकिणी पुरी गये। उसी पुरी को देखने से ही दोनों को जाति स्मरण हो गया। तब उस हिरण्य वर्मा ने अपने नगर में वापिस लौटकर अपने पुत्र सुवर्ण वर्मा को राज्य देकर अनेक पुरुषों के साथ गुणधर नामक चारण ऋद्धि धारी मुनि के निकट समस्त परिग्रह का त्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण कर ली और साधना के बल से चारण ऋद्धि एवं सकल श्रुत का ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रभावती रानी ने भी अनेक स्त्रियों के साथ सुशीला नामकी आर्यिका जी के पास महाव्रतों को अंगीकार कर लिया।

किसी समय गुणधर नामक मुनिराज व सुशीला नामकी आर्यिका अपने संघ सहित शिवंकर उद्यान में आये। तब वहाँ का गुणपाल नामका राजा नगर निवासियों (नागरिक जनों) के साथ उनकी वंदना करने के लिए गया। उसी नगर में विद्युद्वेग नामक का चोर रहता था वह चोर पूर्व भव में वही बिलाव था जिसने रतिवर

कबूतर व रतिवेगा कबूतरी को मारा था। गुणधर नामक मुनिराज की वंदना करने के लिए नागरिक जनों के साथ गुणपाल राजा गया था तब साथ में विद्युद्वेग चोर की स्त्री भी गई थी। वहाँ राजा गुणपाल ने हिरण्य वर्मा व प्रभावती के दीक्षित होने का कारण पूछा, तब मुनिराज ने पूर्वभव का जातिस्मरण कारण बताया तथा वे पूर्व भव भी सुनाये। वह पूर्व भवों का कथन विद्युद्वेग चोर की पत्नी ने अपने पति को ज्यों की त्यों सुना दिया। जिसे सुन कर उसे (विद्युद्वेग चोर को) भी अपने पूर्व भवों का जाति स्मरण हो गया। पुनः पूर्व भव का बैर विचार कर विद्युद्वेग चोर ने रात्रि में हिरण्य वर्मा मुनिराज व प्रभावती आर्यिका दोनों को बांधकर जलती हुई चिता में डाल दिया। जिससे वे दोनों समता पूर्वक शरीर को छोड़कर सौधर्म स्वर्ग के कनक प्रभ विमान में सौधर्मेन्द्र की आभ्यान्तर परिषद का कनक प्रभ देव हुआ और प्रभावती वहीं पर उसी कनकप्रभ देव की कनकप्रभा देवी हुई। इस प्रकार वे दोनों दीर्घकाल तक दिव्य सुखों को भोगकर मध्य लोक के श्रेष्ठ सुखों को प्राप्त हुए। कनकप्रभ देव वहाँ से च्युत होकर इसी जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के कुरुजांगल देश के अन्तर्गत हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ व लक्ष्मी मती के जयकुमार 'मेघेश्वर' नामक राजपुत्र हुए। जो कि भरत चक्रवर्ती के सेनापति व भगवान् आदिनाथ के सत्तरवें गणधर होकर उसी भव में मोक्ष पधारे तथा कनकप्रभा देवी काशी देश की बनारस नगरी में राजा अकम्पन व रानी सुप्रभा के सुलोचना नाम की पुत्री हुई। जो कि जय कुमार की प्राण वल्लभा हुई। भगवान् आदिनाथ के समवशरण में ब्राह्मी सुन्दरी से जिन दीक्षा ले सोलहवें स्वर्ग को प्राप्त हुई, वहाँ से चय कर मनुष्य भव में दीर्घ काल तक उत्तम सुख भोग कर जिन दीक्षा ग्रहण कर, कठिनतम साधना कर मोक्ष प्राप्त करेगी।

इस प्रकार आहार दान की अनुमोदना करने वाले अथवा आहार दान के एक हजार वें पुण्य से वे रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी विद्याधर की विभूति को भोग सौधर्म स्वर्ग में कनकप्रभ देव व कनकप्रभा देवी हुए। पुनः वहाँ से चय कर जयकुमार व सुलोचना हुए जिसमें जयकुमार तो उसी भव से मुक्ति को प्राप्त हुए व सुलोचना आगे मोक्ष प्राप्त करेंगी। तब फिर अन्य कोई विवेकी भव्य जीव नवधा भक्ति व दाता के सप्तगुणों से युक्त हो उत्तम मुनियों वा सत्पात्रों को आहारादि चार प्रकार का दान देंगे, तो क्या वे ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं करेंगे?

अर्थात् अवश्य ही वैसी विभूति को प्राप्त करेंगे। इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को आदि पुराण, पुण्यास्रव कथा कोश, महापुराण या सुलोचना चरित्रादि ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिये।

किं भाषे दान जातं सुख गुणद फलं लोके च ददतु,
यन्मोदात्सार सौख्यं दिवि भुवि विमलं पारापत युगम्।
सेवित्वा मुक्ति लाभं सुख गुण निलयं जात्यादि रहितं,
तस्माद्दानं हि देयं विमल गुण गणैर्भव्यैः सुमुनये।।3।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- लोक में जिस दान से उत्पन्न हुए पुण्य के फल से दाता का सुख और अनेक उत्तम गुणों की प्राप्ति होती है, उस दान के फल के विषय में अधिक क्या कहा जाये? अर्थात् उसका फल वचन के अगोचर है। उस दान की अनुमोदना से कबूतर और कबूतरी स्वर्ग में व पृथ्वी पर भी उत्तम सुखों को भोग कर अन्त में उस मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, जो उत्तम सुख एवं अनेक गुणों का स्थान भूत हैं तथा जन्म, जरा, मृत्यु, रागद्वेष, मोह व ज्ञानावरणादि समस्त कर्मों से, उसके फल रूपी दुखों से रहित है। इसलिए निर्मल गुणों के समूह से सहित भव्य जीवों का कर्तव्य है कि वे उत्तम मुनियों के लिए (चतुर्विध संघ के लिए) आहारादि चार प्रकार का दान देवें।

सोलहवीं कथा

कुबेरकान्त

जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कलावती देश के शोभा नगर में न्यायप्रिय, प्रजात्सल, तत्त्वज्ञ, धर्मार्थी, षट् आवश्यक कर्तव्यों के परिपालन में तत्पर, समस्त कलाओं का पारगामी, नीति निपुण प्रजा पाल नाम का राजा था। जिसकी धर्म वत्सला, प्राणप्रिया का नाम देवी श्री था। इन दोनों के स्वामी भक्त, कर्तव्यशल शक्ति सेन नाम का सेवक था जो कि हजार योद्धाओं के बराबर बलशाली था।

राजा ने उसे ऊँचा पद देते हुए प्रजा की रक्षा करने के लिए धन्नगा नामकी अटवी (वन) में रम्यातट सरोवर के किनारे स्थानान्तरित कर दिया था। इसी शक्तिसेन राजा की शरण में सुकान्त व रतिकान्ता यहाँ आये थे। एक समय शक्ति सेन ने अमितगति नाम के जंघा-चारण मुनिराज का पड़गाहन कर नवधाभक्ति से युक्त हो आहार दिया। जिससे इसके यहाँ पंचाश्चर्य प्रकट हुए। उसी सरोवर के दूसरे किनारे पर मेरूदत्त नामक एक सेठ स्थित था, वह उस प्रशस्त दाता शक्ति सेन को देखने वहाँ आया, तब शक्तिसेन ने उससे अपने यहां भोजन करने की प्रार्थना की। इस पर मेरूदत्त ने कहा कि यदि आगामीभव में इस दान के प्रभाव से तुम मेरे पुत्र होओगे ऐसा निदान बंध करना स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे यहां भोजन कर सकता हूँ। तब शक्तिसेन ने पूछा क्या तुम्हारे लिए ऐसा कहना उचित है? तब मेरूदत्त ने कहा हाँ, उचित है। तब शक्तिसेन ने वैसा निदान

बंध कर लिया। तथा इसकी पत्नी अटवी श्री व मेरूदत्त की पत्नी धारिणी ने भी उनकी पत्नी होने का निदान बंध कर लिया।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रस्थ पुष्कलावती देश के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी पुरी में प्रजापाल राजा के यहाँ मेरूदत्त का जीव कुबेदत्त श्रेष्ठ हुआ। धारिणी का जीव इस भव में धनवती होकर इसकी पत्नी हुई, शक्तिसेन इसका पुत्र कुबेरकान्त एवं अटवी श्री इसकी पत्नी प्रियदत्ता हुई।

अटवी श्री का जीव समुद्र दत्त व कुबेर मित्रा के प्रियदत्त नाम की पुत्री हुई। एक दिन कुबेरकान्त ने सुदर्शन नामक मुनिराज की वन्दना कर एक पत्नी व्रत का नियम ले लिया। किसी समय कुबेर मित्र ने कुबेकान्त के लिए यशोमती, गुणवती, प्रियदत्त आदि एक सौ आठ कन्यायें निश्चित कीं। किन्तु रतिवर कबूतर व रतिवेगा कबूतरी ने लिखकर यह बता दिया कि कुबेकान्त के एक पत्नी व्रत है। तब कुबेरमित्र ने एक सौ आठ घी के पात्र व वस्त्रों के पात्र रखें। एक पात्र में रत्न भी रख दिया था। तब सभी कन्याओं से कहा सुदर्शन तालाव पर स्नान कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर आओ उन्होंने वैसा ही किया। तब कुबेर मित्र ने पूछा कि रत्न किसके पात्र में निकला तब प्रियदत्ता ने कहा कि मेरे पात्र में निकला, ये है वह रत्न। तब कुबेर मित्र ने प्रियदत्त के साथ कुबेरकान्त का विवाह सम्पन्न कर दिया। शेष कन्याओं ने अमितमती व अनन्तमती आर्यिका के पास आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली।

प्रजापाल राजा ने किसी निमित्त से वैराग्य को प्राप्त हो अपनी कनकमाला रानी के पुत्र लोकपाल को राज्य देकर दस हजार क्षत्रिय राजाओं के साथ अमितगति चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के पास जिन दीक्षा ले ली और साधना करके वह मुक्ति को प्राप्त हुआ।कुछ दिनों तक राज सम्मान प्राप्त कर एवं विपुल वैभव का भोक्ता हो सफेद बाल को देखकर कुबेर मित्र राजश्रेष्ठी के लिए वैराग्य हो गया और अपने कुबेरकान्त पुत्र के लिए राज श्रेष्ठी पद देकर अनेक पुरुषों के साथ वरधर्म भट्टारक के समीप जिन दीक्षा ग्रहण कर ली और वे कुबेरमित्र श्रेष्ठी तप करके मुक्ति को प्राप्त हुए।

इधर कुबेरकान्त व प्रियदत्ता के कुबेरदत्त, कुवेर मित्र, कुबेर देव, कुबेर प्रिय, और कुबेर कन्द नाम के पाँच पुत्र व कुबेर श्री नाम की एक पुत्री उत्पन्न हुई। कुवेर श्री का विवाह गुणपाल नामक राजा के साथ हुआ था। एक दिन कुबेर कान्त सेठ ने उन्हीं अमितगति नामक जंघाचारण ऋद्धिधारी मुनिराज का पड़गाहन किया। जिससे उसके यहाँ पंचाश्चर्य हुए। जिसे देखकर रतिवर व रतिवेगा परम प्रसन्न हुए तब कुबेरकान्त ने उन्हें उस दान से प्राप्त पुण्य का एक हजार वाँ भाग देने को कहा

था।

एक दिन कुबेरकान्त सेठ की पत्नी प्रियदत्ता गुणधर मुनि व सुशीला नाम की आर्यिका की वन्दना करने समस्त नगरी वासी व राजा गुणपाल के साथ गयी। वहाँ राजा ने हिरण्य वर्मा व प्रभावती (कबूतर-कबूतरी थे) मुनि व आर्यिका के दीक्षा के कारण के सम्बन्ध में पूछा। तब गुणधर मुनिराज ने जाति स्मरण का कारण बताते हुए सम्पूर्ण पूर्व भव सुना दिये। तदनन्तर प्रियदत्ता से प्रभावती आर्यिका ने कुबेरकान्त श्रेष्ठी के बारे में पूछा कि वह कहाँ है? इस पर प्रियदत्ता ने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया।

एक दिन मैंने किसी आर्यिका माताजी को आहार देकर उनसे दीक्षा का कारण पूछा था तब आर्यिका माताजी ने कहा कि - विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में गान्धार पुर नगर है वहाँ का राजा गन्धराज व रानी मेघ माला है। मैं इन दोनों की रतिमाला नाम की पुत्री हूँ। मेघपुर के राजा रति वर्मा के साथ मेरा विवाह हुआ था। एक दिन मैंने अपने पति के साथ जिनालयों की वन्दना करते समय तुम्हारे पति को देखा तो मैं उन्हें देखते ही काम वासना से पीड़ित हो उसमें आसक्त हो गई।

एक दिन मैंने जिन पूजा व वनक्रीड़ा के अवसर पर जब कुबेरकान्त के साथ में था तब अपने चरित को कपट से कहा कि 'मुझे सर्प ने डस लिया है'। तब मेरा पति रति वर्मा जड़ी-बूटी लेने गया। उस समय मैंने उसे एकान्त में पाकर अपने मन की बात उनसे कही कि 'मुझे सर्प नहीं काटा किन्तु तुम्हारे में मैं अति आसक्त हुई हूँ, मैंने छल से यह उपाय रचा है अतः मुझे अपना संभोग देकर प्राणों की रक्षा करो।' तब कुबेरकान्त बोला 'हे बहिन मैं तो नपुंसक हूँ, तू शीलवती रह, शील को भंग करने का विचार मत कर।' तब मैं अपने पति के साथ नगर में वापिस चल गई। एक दिन मैंने तुम्हें (प्रियदत्ता को) पुत्र के साथ रथ पर जाती हुई देखकर अपने पति से पूछा कि वह स्त्री कौन है?

तब मेरे पति ने कहा कि वह कुबेरकान्त की पत्नी प्रियदत्ता है। तब मैंने कहा कि वह तो नपुंसक है। उसके पुत्र कैसे हो सकता है? इस पर मेरे पति रतिवर्मा ने कहा कि उसके एक पत्नी व्रत है, इसलिए ईर्ष्या से स्त्रियाँ उसे नपुंसक कहती हैं। यह सुनकर मैं अपनी आत्म निंदा करती हुई नगर को वापिस चल गई।

एक दिन बाढ़ की रात्रि में मुझे अपनी दुष्ट प्रवृत्ति का स्मरण हो आया, जिससे मैं अपने मन में बड़ी खेद खिन्न हुई। मुझे खेद खिन्न देखकर मेरे पति ने मुझसे खेद खिन्नता का कारण पूछा, तब मैंने वह कारण (पूर्व वृत्तांत) ज्यों की त्यों कह दिया। तब पति ने कहा संसारी प्राणियों की ऐसी दृष्टवृति हुआ ही करती हैं,

इसमें क्यों आश्चर्य है? अतः तुम क्लेश को छोड़ो। तब मैंने (रतिमाला) अपने पति (रति वर्मा) से अपना निश्चय प्रकट किया कि मैं प्रातः काल तप ग्रहण करूँगी। और मैंने दीक्षा धारण कर ली। यही मेरी दीक्षा का कारण है। यह वृतांत जब आर्यिका माता जी बता रही थीं तब इस वृत्तांत को गृह के अन्दर स्थित सेठ कुबेरकान्त भी सुन रहे थे तब वे निकल कर बाहर आये और आर्यिका माता जी को नमस्कार कर अपने कुबेर प्रिय पुत्र को गुणपाल राजा के लिए सौंप स्वयं ने चारों पुत्रों व अनेक भव्य पुरुषों के साथ जिनदीक्षा धारण कर ली और अब वे मुक्ति को प्राप्त कर चुके हैं।

इस प्रकार वह शक्तिसेन एक बार मुनिराज को दिये गये आहार दान के प्रभाव से कुबेरकान्त सेठ हो मुक्ति को प्राप्त हुआ है तब फिर जो भव्य जीव नवधा भक्ति, दाता के सात या इक्कीस गुणों से व दाता के पाँच आभूषणों से युक्त हो उत्तम पात्रों को आहारादि चार प्रकार का दान देंगे क्या वे ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् वे भी मोक्ष रूपी विभूति को अवश्य प्राप्त करेंगे।

नोटः- इस कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को आदि पुराण, महापुराण, पुण्यास्रव कथा कोश या मेरूमंदर पुराण का स्वाध्याय करना चाहिए।

जातः श्रेष्ठी कुबेरो नव सुनिधिपतिः कान्तोत्तरपदः,
पूर्वं श्री शक्तिसेनः सकृदपि सुगुणः ख्यातः सुददिता।
किं भाषे दान सौख्यं ददतृ गुणवतो जीवस्य विमलं,
तस्माददानं हि देयं विमल गण गणैर्भव्यैः सुमुनये।।4।।6।।

पु.क.को.

अर्थः- पूर्व में जिस शक्ति सेन ने एक बार ही मुनि के लिए आहार दान दिया था, जिससे वह उत्तम गुणों से सुशोभित एवं नव निधियों का स्वामी प्रसिद्ध कुबेरकान्त सेठ हुआ है। दाता के सात गुणों से संयुक्त जीव को दान के प्रभाव से जो निर्मल सुख प्राप्त होता है, उसके विषय में अधिक क्या कहा जाय? अर्थात् वह आहारादि चार प्रकार दान (जब उत्तम पात्रों को दिया जाता है तब वह परम्परा से) अनुपम सुखों अर्थात् मोक्ष सुख को देने वाला होता हैं इसलिए निर्मल गुणों के समूह से सहित भव्य जीवों को उत्तम मुनियों के लिए अथवा सत्पात्रों के लिए या चतुर्विध संघ के लिए आहारादि चार प्रकार का दान अवश्य देना चाहिए।

सत्तरहवीं कथा

श्रीराम-सीता व जटायु पक्षी

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के सुकौशल देश की अयोध्या नाम की नगरी में राजा अनरण्य के पुत्र व राजा रघु के दो पुत्र थे। प्रथम अनन्तरथ दूसरे दशरथ। किसी समय राजा अनरण्य ने संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर अपने पुत्र अनन्तरथ आदि अनेक पुरुषों के साथ अभयसेन मुनिराज के समीप मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। तब अयोध्या नगरी में प्रजा वत्सल, न्याय प्रिय, धर्म ध्यान में तत्पर दशरथ नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी कौशल्या/अपराजिता, सुमित्रा, सुप्रभा एवं कैकसी ये चार रानियाँ थीं। जो क्रमशः दर्भस्थल नगर के राजा कौशल व रानी अमृत प्रभा (की पुत्री कौशल्या/अपराजिता) कमल संकुल नगर के राजा सुबन्धु तिलक व रानी मित्रा (की पुत्री सुमित्रा) महाराजा नामक राजा (की पुत्री सुप्रभा) एवं कौतुक मंगल नगर के राजा शुभमति व रानी पृथु श्री (की पुत्री कैकयी) की पुत्रियाँ थी। जिनसे क्रमशः राम (पद्म/अष्टम बलभद्र) लक्ष्मण (अष्टम नारायण) शत्रुघ्न एवं भरत नामक पुत्र हुए।

कौतुक मंगल नगर में हेमप्रभ राजा के साथ युद्ध के समय में रानी कैकयी ने कुशलता पूर्वक रथ का संचालन करके महाराजा दशरथ की अपूर्व सहायता की थी जिससे प्रसन्न होकर महाराजा दशरथ ने कैकयी को वरदान माँगने को कहा तब कैकयी ने 'जब आवश्यकता होगी तब माँग लूँगी' कहकर राजा के वचन को स्थायी रख लिया।

एक दिन सर्वभूत हित शरण्य नामक मुनिराज से धर्मोपदेश व पूर्वभव सुनकर राजा दशरथ परम वैराग्य को प्राप्त हो जिनदीक्षा के लिए तत्पर हुए। राजा

दशरथ को दीक्षा के लिए तत्पर देखकर भरत भी परम वैराग्य भाव को धारण करते हुए जिनदीक्षा को जाने लगे। तब कैकयी अत्यन्त दुःखित हुई, मोह से मोहित हो उन्हें रोकने का आग्रह करने लगी। जब उन दोनों ने अपने निश्चय को नहीं बदला तब कैकयी ने महाराजा दशरथ से पूर्व में दिये वचन स्वरूप वरदान माँगा। मेरे पुत्र भरत को राज गद्दी (राज्य) दी जाये। इससे महाराजा दशरथ धर्म संकट में पड़ गये। तब उन्होंने राम लक्ष्मण को बुलाकर अपना धर्म संकट उनसे कहा कि यदि मैं भरत को राज्य नहीं देता हूँ तो मेरा वचन भंग होता है तथा इससे मेरी अपकीर्ति भी होगी। और यदि राज्य भरत को देता हूँ तो लोक रीति के प्रतिकूल होता हूँ क्योंकि राज्य पर बड़े पुत्र का अधिकार होता है। इस प्रकार तुम्हारे प्रति अन्याय होगा, तुम दोनों कहाँ रहोगे। इस पर राम लक्ष्मण ने कहा पिताजी आप चिन्ता न करें। आप अपने वचन का पालन करें क्योंकि सत्य ही राजा का प्राण होता है, दूसरी बात यह है कि यदि भरत जी दीक्षा लेते हैं तो माँ कैकयी पुत्र वियोग में अपने प्राण भी छोड़ सकती हैं सो यह महा अनर्थ हो जायेगा। इसलिए हम अपना सौभाग्य मानकर वन वास करेंगे। आपकी आज्ञा हमें सदैव शिरोधार्य थी, है, रहेगी।

यह निवेदन करते हुए राम, लक्ष्मण व सीता जी अपने पिता के चरणों में विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके वन के लिए चले गये।

एक बार जब रामचन्द्र जी व सीता जी नर्मदा नदी के किनारे दण्डक वन में ठहरे थे, उस समय लक्ष्मण जी वन भ्रमण के लिए गये थे। वहाँ सीता जी जंगलीय फलों से महास्वादिष्ट भोजन तैयार कर द्वार पेक्षण करने के लिए खड़ी थीं, तभी गुप्ति व सुगुप्ति नाम के दो चारण ऋद्धि धारी मुनिराज आकाश मार्ग से आये। वे मति श्रुतावधि ज्ञान के धारक, परम तेजस्वी, मासोपवासी, धीर, वीर, गंभीर, प्राणी मात्र को आनंदित करने वाले थे जिन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि हमें दण्डक वन में कोई दाता नवधाभक्ति से आहार देगा तभी आहार ग्रहण करेंगे, अन्यथा नहीं।

उन दोनों मुनिराजों का रामचन्द्र जी व सीता जी ने भक्ति भाव से पड़गाहन किया एवं नवधा भक्ति व दाता के सप्त गुणों से युक्त होकर दूध, छुहारा, नारियल, गिरी, दाख, किसमिस, घी से मिश्रित मिष्ठान, खीर, रबड़ी, आदि का आहार दिया। जिसके प्रभाव से वहाँ रत्न वृष्टि, पुष्प वृष्टि, शीतल मंद सुगंध वयार का बहना, देव दुंदुभि बाजे एवं जयकार ध्वनि रूप पंचाश्चर्य हुए। तभी वहाँ एक गृध (गीध) पक्षी आया, आहार देखते हुए उसे अपने पूर्व भव का स्मरण हो गया जिससे वह अश्रुपात करता हुआ पूर्व-भव में कृत अपने पाप कर्मों की आलोचना व आत्मनिंदा के साथ पश्चाताप करने लगा। तथा मुनिराज के चरणों के धोवन

(गंधोदक) जल में लोटने लगा।

जिससे उसका सारा शरीर कंचन के समान व पंख नीलमणि या रत्नों के समान, चोंच मूंगा के समान सुन्दर प्रतिभासित होने लगी। तब श्री राम चन्द्र जी ने मुनिराज के चरणों में प्रणाम करके पूछा कि दुष्ट गृध पक्षी आपके चरणों में पश्चाताप के आँसू बहाकर, अत्यंत सुन्दर रूप को प्राप्त कर शांत क्यों बैठा है? इस प्रकार पूछने पर सुगुप्ति नामक मुनिराज ने गृध पक्षी (जटायु पक्षी) के पूर्व-भव कहना प्रारंभ किया।

इसी स्थल पर दण्डक नाम के सुन्दर देश में कर्ण कुण्डल नाम का एक नगर था जिसमें दण्डक नाम का राजा (इस गृध पक्षी का जीव) राज्य करता था।

जो अधर्मी, अधर्म का पोषक व दण्डानुयायी था। एक दिन वन भ्रमण के समय किन्हीं दिगम्बर मुनिराज के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। तब मुनिराज उपसर्ग मानकर वहीं बैठे रहे। कुछ दिनों बाद जब राजा दण्डक वहाँ से निकले तब मुनिराज को उसी प्रकार ध्यान में स्थिर देखकर, उस सर्प को निकाल कर दूर किया, तथा मुनिराज की समता, त्याग, तपस्या व साधुता से प्रभावित हो अपनी निंदा करते हुए पश्चाताप के साथ उनसे क्षमा याचना की और जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान् हो गया।

यह वृत्तांत जब रानी ने सुना तो उसने अपने गुरु दण्डियों को बुलाकर राजा के जैन होने का वृत्तांत कहा तथा एक षड्यन्त्र रचा। एक दिन अपने दण्डानुयायी गुरू को अपने महल में एकान्त में बुलाया तथा उससे दिगम्बर मुनि भेष धारण करवा कर उससे वह अपने प्रति अश्लील चेष्टा करवाने लगी। तभी रानी ने यह समाचार किसी व्यक्ति के द्वारा राजा के पास भिजवा दिया। कहा देखा दिगम्बर जैन साधु कैसे रहते हैं? तब राजा ने बिना सोच समझे रानी व दण्डानुयायी की बातों में आकर मुनियों पर घोर उपसर्ग प्रारम्भ करवा दिया। इतना ही नहीं राजा ने अत्यन्त कुपित हो आचार्य सहित मुनियों को घानी में पिलवा दिया। सत्य ही है पापी जीव संसार में कौन सा दुष्कर्म नहीं करते, धर्म द्रोह करके प्राणी अनंत पापों का बंध करके अनंत काल तक घोर दुखों को प्राप्त करता है।

राजा दण्डक के इस महापाप से यहाँ प्रलय हुआ जिससे सारा देश ही नष्ट हो गया। यह क्षेत्र तब से लेकर अभी तक दण्डक वन से प्रसिद्ध है मुनियों व धर्मात्माओं का आगमन होने से इसमें अब वृक्ष उग आये हैं। वह राजा दण्डक मरणोपरान्त नरक में गया और वहाँ से निकल कर अनेक बार तिर्यंच व नरक गति के दुखों को भोग कर आज गृध (जटायु पक्षी) हुआ है। पूर्वभव का जाति-स्मरण हो

जाने से पश्चाताप के आँसू बहा रहा है तथा आहार दान की अनुमोदना से इसका शरीर सुन्दर हो गया है। इस प्रकार सुगुप्ति मुनिराज धर्मोपदेश देकर व पूर्व भव बतलाकर आकाश मार्ग से विहार कर गये।

कुछ समयोपरान्त यह गृध पक्षी (सीता हरण के समय) रावण से सीता की रक्षा के लिए युद्ध करके, रावण की तलवार से घायल हो तथा श्री रामचन्द्र जी के मुखारबिन्द से णमोकार मंत्र सुनकर देव गति को प्राप्त हुआ। श्री रामचन्द्र जी (अष्टम बलभद्र श्री पद्म) वनवास से वापिस आकर दीर्घकाल तक राज्य सुख को भोगकर, लक्ष्मण की मृत्यु से परम वैराग्य को प्राप्त हुए और संसार, शरीर, भोगों से परम वैराग्य भाव को धारण कर दिगम्बर (वीतरागी जिन) मुनिदीक्षा ग्रहण कर, वस्त्रादि सकल परिग्रह का त्याग कर दिया। और कठिन साधना करके केवल ज्ञान को प्राप्त किया। दीर्घकाल तक केवली अर्हंत अवस्था में विहार किया आयु के अंत में समस्त कर्मों को नष्ट कर मांगी तुंगी से मोक्ष पधारे।

सीता जी अग्नि परीक्षा के उपरांत पृथ्वीमती आर्यिका के पास जिन दीक्षा (आर्यिका) लेकर, कठिनतम साधना करके, स्त्री पर्याय को नष्ट कर सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई। जो कुछ भवों के बाद मोक्ष को प्राप्त करेंगी। जटायु पक्षी भी कालान्नतर में मोक्ष जायेगा।

आहार दान के प्रभाव से श्री रामचन्द्र जी व सीता जी एवं अनुमोदना से गृध (जटायु) पक्षी इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुए हैं, तब अन्य कोई विवेकी भव्य जीव नवधाभक्ति से युक्त हो उत्तम पात्रों को (चतुर्विध संघ को) आहारादि चार प्रकार का दान देंगे तो क्या वे ऐसी विभूति को प्राप्त नहीं होंगे। अर्थात् अवश्य होंगे।

नोटः- कथा को विस्तार से पढ़ने के इच्छुक महानुभावों को पद्म पुराण-पद्म चरित्र आदि ग्रंथों का स्वाध्याय करना चाहिए।

अठारहवीं-कथा

नाग श्री

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रस्थ आर्यखण्ड के अन्तर्गत जनपद देश के कावेरी पत्तन नगर में दीनों का रक्षक, अमीरों का बन्धु, न्याय प्रिय, धर्मज्ञ, प्रजावत्सल उग्रसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में एक धनपति नामक सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम धनश्री था, उन दोनों के वृषभ सेना नामकी गुणज्ञ, धर्मवत्सला, रूप सौंदर्य की निधि स्वरूप सुयोग्य कन्या थी। इसकी रूपवती नाम की एक धाय थी। जो इसकी सेवा में सदैव प्राणपन से समर्पित रहती थी।

एक दिन वृषभसेना के स्नान किये हुए जल में (गड्ढे में) एक रोगी कुत्ता गिर गया जब उसे निकाला गया तो वह निरोगी होकर निकला। तब धाय ने कुत्ते के निरोगी होने का कारण वृषभसेना का स्नान किया हुआ जल ही जाना। तब उस धाय ने बारह वर्ष से नेत्र रोग से पीड़ित अपनी माँ के नेत्र उसी जल से धोये जिससे उनमें पुनः ज्योति आ गई। इससे वह धाय नगर में सर्व रोग हरने वाली के नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

एक समय उग्रसेन राजा ने अपने मंत्री रणपिंगल को मेघपिंगल से युद्ध करने हेतु भेजा। तब मेघ पिंगल के देश में विष मिश्रित पानी पीने से वह ज्वर रोग से पीड़ित हो गया, तब रूपवती धाय ने वृषभसेना के स्नान के जल से उसे निरोगी कर दिया। तदनन्तर राजा उग्रसेन युद्ध करने गया किन्तु विष मिश्रित जल के सेवन से वह भी अस्वस्थ हो वापिस लौट आया। तदनन्तर राजा ने धाय से वही जल मांगा जिससे राजा निरोगी हो गया तब उसने उस जल के बारे में पूछा। इस

पर धनपति सेठ ने यथार्थ वृतांत कह सुनाया। तब राजा ने वृषभ सेना के साथ विवाह कर देने के लिए कहा। इस पर धनपति ने कहा कि यदि तुम अष्टाह्निका में जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, पिंजड़ों से समस्त पक्षियों को और कारागार से बन्दीयों को मुक्त करते हो तो मुझे आपकी बात स्वीकार है। राजा ने जिन पूजा का संकल्प लेकर, समस्त पक्षी व मनुष्यों को बन्धन से मुक्त कर दिया। तब वृषभसेना का विवाह राजा उग्रसेन के साथ कर दिया गया। राजा भी अति प्रीति युक्त हो उसके साथ काम क्रीड़ा करने में लीन हो गया।

इसी अवसर पर वाराणसी नगरी में पृथ्वी चन्द्र राजा की नारायण दत्त रानी ने वाराणसी में वृषभसेना के नाम से भोजन गृह खुलवाये। जिनमें किसी के भी प्रवेश का निषेध नहीं था। जहाँ भोजन करके पथिक कावेरी पत्तन पहुँचे। तब यह समाचार रूपवती धाय को ज्ञात हुआ। उसने वृषभसेना से पूछा कि तुमने वाराणसी में भोजन गृह क्यों बनवाये हैं? तब वृषभसेना ने कहा कि मैंने नहीं बनवाये किसी अन्य व्यक्ति ने मेरे नाम से बनाये हैं तथा वे क्यों किसने बनवाये हैं इस बात का तुम पता लगाओ? तब रूपवती धाय ने गुप्तचारों द्वारा पता लगाया कि वे नारायण दत्त ने अपने पति पृथ्वी चन्द्र को बन्धन से मुक्त कराने हेतु बनवाये हैं। तब वृषभसेना ने उस राजा को भी मुक्त करा दिया उग्रसेन ने विवाह के समय भी शक्तिशाली समंझ कर नहीं छोड़ा था।

एक दिन पृथ्वी चन्द्र एक चित्र पट्ट पर उग्रसेन व वृषभसेना का चित्र (जिसमें नीचे पृथ्वी चन्द्र प्रणाम कर रहा है) उसमें ऐसा अपना चित्र भी बनवाकर लाया। राजा व रानी को भेंट कर, अपने अपराध की क्षमा माँगी, राजा उग्रसेन ने उसे मेघपिंगल पर चढ़ाई करने भेजा। तब मेघ पिंगल स्वयं राजा के सामने आकर नतमस्त हुआ। राजा उग्रसेन ने प्रसन्न होकर उसे अपना सामन्त बना दिया। तथा ऐसी व्यवस्था की राज्य सभा में स्थित रहते हुए मेरे लिए जो भेंट आती है उसका मेघ पिंगल वे वृषभसेना को आधा-आधा भाग दूँगा। एक दिन दो रत्न भेंट में आये। तब राजा उग्रसेन ने उसे नाम से चिह्नित कर एक वृषभसेना को तथा दूसरा मेघपिंगल को दे दिया।

एक दिन मेघपिंगल की पत्नी विजया उसी रत्न कम्बल को ओढ़कर किसी काम से रूपवती धाय के पास आयी तब भूल से उसका कम्बल वहाँ बदल गया। और वृषभसेना के कम्बल को भूल से ओढ़कर चली गई।

एक दिन मेघ पिंगल वृषभसेना के नाम से चिह्नित उसी रत्न कम्बल को ओढ़कर राजसभा में आया। तब उग्रसेन उस पर बड़ा कुपित हुआ। मेघ पिंगल

राजा को कुपित देख कर दूर देश चला गया। राजा उग्रसेन ने वृषभसेना को मारने के उद्देश्य से समुद्र में फिकवा दिया। किन्तु वृषभसेना अपने शील में दृढ़ थी जिसके प्रभाव से जल देवता ने वहाँ सिंहासन बना दिया। तब राजा उग्रसेन वृषभसेना को लेने गया, क्षमा याचना की एवं अपनी भूल के प्रति पश्चाताप भी किया। तब व्रषभसेना ने क्षमा प्रदान कर, जिन दीक्षा (आर्यिका दीक्षा) को ग्रहण करने हेतु प्रस्थान किया। वहाँ विराजमान अवधि ज्ञानी मुनिराज गुणधर स्वामी से अपने पूर्व भव पूछे। तब मुनि श्री ने इस प्रकार कहे। पूर्व भव में तू इसी नगर में नाग श्री नाम की ब्राह्मण पुत्री थी। यहाँ के देव मन्दिर में झाड़ू लगाती थी। (एक दिन मंदिर के समीप मुनिदत्त नाम के मुनिराज ध्यान में संलग्न थे, तब तूने झाड़ू लगाने के पूर्व उनसे उठकर अन्यत्र चले जाने को कहा किन्तु वे ध्यान में लीन रहे। उस समय तूने क्रोध वश उन्हें कूड़े कचरे में ढका दिया। प्रातः काल जब राजा वहाँ आया और वहाँ मुनिराज को कचरे में ढका हुआ देखा तो उन्हें उस कूड़े कचरे से बाहर निकाला। तदनन्तर तूने आत्म निंदाकर जिनधर्म के प्रति श्रद्धा की। और मुनिराज की पीड़ा को शान्त करने के लिए विशेष औषधि दी एवं सेवा-वैयावृत्ति करायी। तदनन्तर तू निदान पूर्वक मृत्यु को प्राप्त होकर यहाँ पर धनपति सेठ व धन श्री के वृषभ सेना नामकी पुत्री हुई है। तथा मुनिराज पर कूड़ा कचरा डालने से यहाँ तू कलंक/लोक निंदा को प्राप्त हुई है। यह सुनकर वृषभ सेना ने मुनिराज के समीप आर्यिका दीक्षा को ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार वह नागश्री ब्राह्मण पुत्री औषधदान के फल से ऐसी विभूति को प्राप्त हुई है, तब फिर विवेकी भव्य जीव श्रद्धाभक्ति पूर्वक सत्पात्रों को औषधिदान देंगे, क्या वे ऐसे फल को प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य ही उत्तम विभूति को प्राप्त होंगे।

उन्नीसवीं कथा

गोविन्द ग्वाला

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी कुरुमणि ग्राम में गायों को चराने वाला, भद्र परिणामी, मन्द कषायी गोविन्द नाम का ग्वाला रहता था। एक दिन जंगल में गायों को चराते समय किसी वृक्ष की कोटर में एक प्राचीन ग्रंथ रखा हुआ देखा। उसने (गोविन्द ग्वाले ने) उस शास्त्र की भक्ति भाव से पूजा की तथा उसे अपने घर ले आया। किसी दिन आहार चर्या से वन की ओर लौटते समय पद्म नंदी मुनि को देखा। उनके चरणों में श्रद्धा भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हुए हुए ग्रंथ उनके कर कमलों में समर्पित कर दिया। उस शास्त्र से, पद्मनंदी मुनि ने अनेक श्रमण व श्रावकों को उसका व्याख्यान दिया एवं धर्म पिपासु, आत्म कल्याणेच्छुक अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश दिया। उसके बाद वे मुनिराज उस शास्त्र को उसी कोटर में रख कर चले गये। गोविन्द बाल्यावस्था से उस शास्त्र की पूजा करता था।

कालान्तर में वह गोविन्द नामका ग्वाला मृत्यु को प्राप्त हुआ और निदान करके उसी गाँव के प्रसिद्ध (मुखिया) के यहाँ पुत्र हुआ। एक बार उन्हीं पद्मनंदी मुनिराज के दर्शन कर उसे जाति स्मरण हो गया। जिससे वह संसार, शरीर, भोगों से परम वैराग्य भाव को प्राप्त हुआ। और उन्हीं मुनिराज से दिगम्बर जिन दीक्षा को ग्रहण कर आगम का पारगामी हुआ। वे कौण्डेश नामक श्रुत पारंगत मुनिराज हम अज्ञानी जीवों को भी सद्बुद्धि देवें।

इस प्रकार वह गोविन्द नाम का ग्वाला एक बार दिये गये शास्त्र दान के प्रभाव से श्रुत के पारगामी कौण्डेश नाम के मुनिराज हुए जो कि आगे मोक्ष प्राप्त करेंगे। तब फिर अन्य कोई विवेकी भव्य जीव सत्पात्रों को आर्षमार्गीय, जिनेन्द्र देव द्वारा प्रणीत आगम स्वाध्याय हेतु भक्ति व श्रद्धा के साथ भेंट करते हैं व प्रकाशन कराते हैं क्या वे इस प्रकार के फल को प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य की वे भव्य जीव श्रुत केवली व केवली अवस्था प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

बीसवीं कथा

सूकर

मालव देश के घट ग्राम में देविल नाम का कुंभकार एवं धम्मिल नाम का नाई रहता था। उन दोनों ने अपने न्यायोपार्जित धन के द्वारा पथिक जनों के ठहरने के लिए एक धर्मशाला बनवायी। वहाँ पर साधर्मी बन्धु आकर के ठहरते कुछ समय बाद विहार कर जाते। एक दिन विहार करते हुए दिगम्बर मुनिराज वहाँ पधारे। तब देविल ने बड़ी श्रद्धा भक्ति पूर्वक अनुनय-विनय कर मुनिराज को वहाँ ठहरा दिया। जिससे वहाँ साधर्मी बंधुओं में धर्म के प्रति अभूतपूर्व रुचि जागृत हुई। धर्म की प्रभावना को वह धम्मिल नाई सहन नहीं कर सका और उस में विघ्न पैदा करने के उद्देश्य से ईर्ष्या वश वह एक परिव्राजक को वहाँ ले आया। और वहीं ठहरा दिया इतना ही नहीं उन्होंने (धम्मिल व परिव्राजक दोनों ने मिलकर) मुनिराज को रात्रि में वहां से सापमान बाहर निकाल दिया। मुनिराज शांत स्वभावी थे अपने परिणामों में साम्य भाव धारण कर किसी वृक्ष के नीचे डांस, मच्छर तथा अत्यंत शीत परीषह को रात्रि भर सहते रहे। मुनिराज के परिणामों में रंच मात्र भी कोई विकल्प नहीं था। किन्तु प्रातः काल देविल को धम्मिल और उस परिव्राजक की करतूत का वृत्तांत ज्ञात हुआ तो उसे क्रोध आ गया। तब धम्मिल और देविल में दोनों में झगड़ा हुआ। जिस झगड़े-विवाद में दोनों मृत्यु को प्राप्त हुए। देखो पुण्यात्मा जीव व पापी जीव की संगति से किस प्रकार परिणामों में व क्रिया कलापों में अन्तर आ जाता है। कहाँ तो मुनिराज के माध्यम से अतिशय धर्म प्रभावना हो रही थी, सभी में वात्सल्य, प्रेम, मैत्री, परोपकार की भावना एवं त्याग वृत्ति का संवर्धन हो रहा था। सभी धर्म ध्यान में संलग्न थे तो अनन्तर समय में परिव्राजक व धम्मिल नाई ने क्रूर परिणाम व दुराशय पूर्वक मुनिराज को रात्रि में बाहर निकाल दिया। जिससे सारे घट ग्राम में क्षोभ विद्यमान हो गया। और उस परिव्राजक के निमित्त से दोनों (देविल व धम्मिल)

मृत्यु को प्राप्त हुए। विन्ध्याचल पर्वत पर देविल तो सूकर हुआ तथा धम्मिल नाई व्याघ्र (शेर) हुआ। वे दोनों क्रम-क्रम से बड़े हुए। जिस गुफा में सूकर रहता था उसी गुफा में एक दिन समाधिगुप्त और त्रिगुप्त नाम के दो मुनिराज आकर के ठहरे। जब सूकर ने उन दोनों मुनिराजों को देखा तो उसे जाति-स्मरण हो आया और उस सूकर (देविल कुंभकार के जीव) ने मुनिराज से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक के व्रतों को ग्रहण कर लिया। अब सूकर मुनिराज की सेवा में समर्पित हो गुफा के द्वार पर बैठा ही था कि तब तक मनुष्यों की गन्ध को सूँघता हुआ व्याघ्र भी वहाँ आ पहुँचा। जब उस व्याघ्र ने उन मुनिराजों को देखा तो वह उन्हें खाने के लिए तत्पर हुआ।

सूकर गुफा के द्वार पर मुनियों की रक्षा के लिए खड़ा हो गया। तब व्याघ्र को उसने अन्दर नहीं जाने दिया तो व्याघ्र ने सूकर के ऊपर ही आक्रमण कर दिया। सूकर ने मुनियों की रक्षा के निमित्त उससे पूरी शक्ति के साथ युद्ध किया। फिर भी उससे जीत नहीं सका। अंत में सूकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। व्याघ्र भी सूकर के आघातों से अपने प्राण नहीं बचा सका और वह भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। सूकर मुनियों की रक्षा के भाव से मरा, जीते जी मुनिराज पर उपसर्ग नहीं होने दिया। उनकी रक्षा में अपने प्राणों को समर्पित कर दिया। उसने वहाँ यह नहीं सोचा कि द्रव्य लिंगी हैं या भाव लिंगी। अपितु मुनि रक्षा रूप अपने कर्तव्य पालन में अपने प्राणों की आहूति देकर सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धियों का धारी देव हुआ। तथा व्याघ्र ने मुनियों पर उपसर्ग करना चाहा तथा उनको भक्षण करने के खोटे भावों से उसने नरकायु का बंध कर लिया। और मृत्यु को प्राप्त कर नरक गया। जब वह अज्ञानी, तिर्यंच, निंद्य पर्याय वाला सूकर मुनि रक्षा व वसतिका दान के प्रभाव से देवों के अपरिमित वैभव, उत्तम भोगों, अनेक ऋद्धि एवं दिव्य सुखों का भोक्ता हुआ है। तब फिर जो विवेकी पुरुष भक्ति वश मुनियों के लिए, धर्मात्माओं को ठहरने के लिए उत्तम स्थान देंगे क्या वे उत्तम स्थान को प्राप्त नहीं होंगे? अर्थात् वे परम्परा से अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करेंगे।

समाप्त